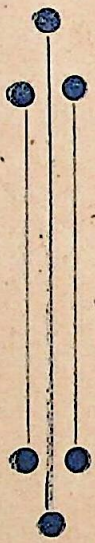
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

रद-नीति



लेखक

वे० शा० स्वामी वेदानन्द [दयानन्द] तीर्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थान के प्रमुख प्रकाशन

सांख्यदर्शन का इतिहास

सांख्यदर्शन के सम्बन्ध में फैली विविध भ्रान्तियों का युक्ति-युक्त एवं प्रमाणसहित निराकरण इस ग्रन्थ द्वारा प्रस्तुत किया गया है। सांख्यदर्शन की प्राचीनता के प्रतिपादन के साथ-साथ अनेक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक विवेचन तथा कपिल के अतिरिक्त अन्य अनेक प्राचीन सांख्याचार्यों का विवरण और उनके समुपलब्ध संदर्भों का संग्रह इस ग्रंथ में दिया गया है। लेखक महोदय श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री को इस ग्रन्थ पर निम्नलिखित पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं—

१२००) रु० मंगलाप्रसाद पुरुस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

१२००) रु० उत्तर प्रदेश सरकार।

१०००) रु० विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

१०००) रु० सेठ हरजीमल डालमिया स्ट्रस्ट, नई दिल्ली।

यह ग्रन्थ २०×३०।८ आकार के लगभग ६०० पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। वढ़िया जिल्द है। थोड़ी प्रतियां शेष हैं। मूल्य ३०) रु०

सांख्यदर्शन विद्योदयभाष्य

भाष्यकार-विद्याभास्कर श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री, विद्यावाचस्पति

इस भाष्य की विशेषता यह है, कि यह पूर्वोपलब्ध संस्कृत भाष्यों का उल्थामात्र नहीं; अपितु यह स्वयं एक मौलिक ग्रंथ है। विद्वान् भाष्यकार ने अपने जीवन का पर्याप्त भाग लगाकर सांख्य विषय का ऊहापोह पूर्वक मन्थन और विवेचन किया है; उसीके परिणामस्वरूप जो यथार्थ विचाररूपी 'नवनीत' वह संगृहीत कर पाए हैं, उसे परम्परागत भाष्यशैली को अवहेलित न करते हुए साधु सहृदय, विज्ञ पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करने के उद्देश्य से यह भाष्य लिखा गया है। वे प्रक्षिप्त सूत्र इस भाष्य में संगृहीत नहीं किए गए, जिनका सप्रमाण विवेचन ग्रन्थकार ने 'सांख्यदर्शन का इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ में किया है। उन सब सूत्रों की व्याख्या और संगति 'परिशिष्ट २' में दे दी गई है।

यह भाष्य-ग्रन्थ १८×२९।८ आकार के लगभग पौने चार सौ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। वढ़िया जिल्द है। मूल्य ८) रु०।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151
1109/6
भा. पु.
पं. सं.

ओ३म्

नारद-नीति

पाणिनि कन्या महाविद्यालय
पो. रामटेक, जि. नागपुर.

पाण्डवश्रेष्ठ धर्म्मराज युधिष्ठिर के प्रति विविधागमपारगामी
सर्वधर्म्मवित् महर्षि नारद का उपदेश

उद्धारक, अनुवादक एवं व्याख्याता

वेदामृत, स्वदेशभक्ति वैदिकधर्म्म, राष्ट्ररक्षा के वैदिक साधन,
स्वाध्याय संदीप, स्वाध्यायसन्दोह, योगोपनिषत्,
ब्रह्मोद्योपनिषत्, वेदप्रवेश, आदि आदि
अनेक ग्रंथों के प्रणेता

ब्रह्मचारी कौशलेश्वर कुमार 'आर्य'
पधान्, धार्वजवाज
ब्रह्मचारी

वे० शा० स्वामी वेदानन्द [दयानन्द] तीर्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रकाशक—
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, अध्यक्ष—
विरजानन्द वैदिक संस्थान,
गाजियाबाद (मेरठ) उ० प्र०

सम्पादक—
श्री पं० उदयवीर शास्त्री

द्वितीय आवृत्ति
मूल्य ००.८० पैसे केवल
ज्येष्ठ, संवत् २०३० विक्रमी
जून, सन् १९७३ ईसवी

मुद्रक—

जनशक्ति मुद्रण यन्त्रालय
के० १७ नवीन शाहदरा,
दिल्ली-३२

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी कौशलेश्वर कुमार 'प्रात'
सभासद, आर्यसमाज
गोतिहारी



॥ ओ३म् ॥

नारद-नीति

पूर्व पीठिका

भारतीय नीतिमाला का यह द्वितीय पुष्प- नारदनीति-पाठकों के करकमलों में सप्रश्रय समर्पित है। यह महाभारत के सभापर्व का पञ्चम अध्याय है। इसका प्रसङ्ग इसप्रकार है। खाण्डव वन का दहन करते समय अर्जुन ने उसमें रहने वाले मय दानव का प्राणत्राण किया। कृतज्ञ मय ने अर्जुन का प्रत्युपकार करना चाहा, किन्तु आर्य्यवर अर्जुन ने उत्तर दिया—

कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर।
प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीमिमन्तो वयं च ते ॥ (महा. सभा.१।४)

हे महासुर-महाप्राण ! आपने सब कुछ कर दिया, आनन्द से जाइये, आप हमसे सदा प्रीति रखिए, हमारी आप पर सदा प्रीति रहेगी।

किन्तु मय ने प्रत्युपकार के लिए बहुत आग्रह किया और कहा, कि मै दानवों का विश्वकर्म्मा हूं। उसके इस आग्रह से गृहीत होकर अर्जुन ने कहा—

प्राणकृच्छ्राद्विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया।
एवं गते न शक्ष्यामि किञ्चित्कारयितुं त्वया ॥……७
न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव।
कृष्णस्य क्रियतां किंचित् तथा प्रतिकृतं मयि ॥……८

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अपने आप को मेरे द्वारा प्राण सङ्कट से छुड़वाया मानते हो, ऐसी दशा में मैं तो आपसे कुछ नहीं करा सकता। किन्तु, हे दानव। आपके सङ्कल्प को भी विफल नहीं होने देना चाहता, अतः आप श्रीकृष्ण जी के लिए कुछ कर दीजिए, इस भांति मेरे प्रति आपका प्रत्युपकार हो जाएगा।

मय की प्रेरणा पर प्रत्युत्पन्नमति [समय पर यथायोग्य योग= उपाय सुझाने वाले] कृष्ण जी ने कहा—'यदि आप कुछ करना चाहते हैं, तो महाराजा युधिष्ठिर के लिए ऐसी सभा=प्रासाद बना दीजिए जो अनुपम हो।

मय ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी का वचन पालन करते हुए विमान समान प्रासाद बना दिया। राजा युधिष्ठिर ने उसे यथेष्ठ पुरस्कार दिया। इस सभा को बनने में चौदह मास से अधिक लगे थे।

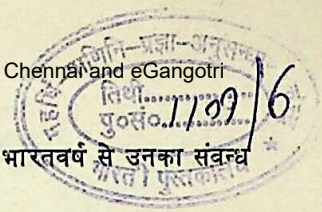
मय कौन था, महाभारत से इसका विशेष पता नहीं चलता। महाभारत आदिपर्व के २२ वें अध्याय के ४१ वें श्लोक में उसे 'दानवेन्द्रों के शिल्पियों में श्रेष्ठ' कहा गया है। और ४५ वें श्लोक में उसे 'नमुचि का भ्राता' बताया गया है। सभापर्व प्रथमाध्याय में उसके मुख से उसे 'दानवों का विश्वकर्म्मा तथा 'महाकवि' कहलाया गया है।

अमरीका में, यूरोपियन लोगों के जाने से पूर्व वहां जो जातियां रहती थीं, उनमें से एक का नाम Maya लिखा जाता है। स्पष्ट ही यह शब्द 'मय' है। मयों के संबन्ध में निरीह हत्याकारी नृशंस यूरोपियनों ने लिखा है, कि वे शिल्पविद्या Engineering में अत्यन्त दक्ष तथा निपुण थे। कई बातों में तो वर्तमान समुन्नत भवन-निर्माण विज्ञान भी उनकी कला की समता नहीं कर पाता।

हमारा विचार है, और इसके लिए आधार भी है, कि अत्यन्त पुराने समय में वर्तमान अमरीका से हमारा राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संबन्ध रहा है। मय लोग कदाचित् यहां से प्रवास करके अमरीका चले गये हों, और उन्होंने वहां अपना स्थिर आवास बनाया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो। जो भी हो, इतनी बात तो सिद्ध है कि भारतवर्ष से उनका संबन्ध अवश्य था।

राजा युधिष्ठिर ने दस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराके नये भवन में प्रवेश किया। ब्राह्मणों को पुष्कल दान दक्षिणा भी दी। यह शालाप्रवेश संस्कार धूमधाम से सम्पन्न कराके बैठे ही थे, कि निखिल विद्यानिष्णात नारदमुनि आ पहुंचे। मुनि ने राजा से राजप्रबन्ध सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये हैं। उनमें नीतिविषयक प्रायः सकल तत्त्व आ गए हैं। यतः नारद ने प्रश्नों के द्वारा नीति तत्त्व का वर्णन किया है, अतः इस अध्याय का नाम **'नारदप्रश्न'** है। विषय की दृष्टि से हमने इसका नाम 'नारदनीति' रखा है।

इसमें नीतिकारों के आदिम मानवगुरु मनु की पूरी छाप है। कहीं कहीं हमने टिप्पणी में साम्य दिखलाने के लिए मनु के श्लोक दे भी दिये हैं। पाठक इसको पढ़ने से ऐसा अनुभव करेंगे कि वे किसी वर्तमान युग के मानवहित प्रेरित महानुभाव की कृति पढ़ रहे हैं।

७ फाल्गुन २००८ वि० स्वामी वेदानन्दतीर्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय-आवृत्ति आमुख

श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी महाराज अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। उनकी गहरी जानकारी से कोई विषय अछूता न था। उन्होंने जहां वेद-धर्मविषयक अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों का प्रणयन किया, वहाँ कई प्राचीन नीतिविशारद आचार्यों के नीतिविषयक सन्दर्भों व लघुरचनाओं का उद्धार व प्रचार किया। इसी प्रसंग में यह एक 'नारद-नीति' नामक रचना है।

श्री स्वामीजी की रचनाओं में अनेक ऐसे उल्लेख उपलब्ध होते हैं, जिनसे उस विषय की किसी नवीन रचना के लिखे जाने का उनका संकल्प ज्ञात होता है; पर चालू कार्यों की अत्यधिक व्यस्तता से वे रचना लिखी नहीं जा सकीं। सन् १९५८ के प्रारम्भ में उनका देहावसान होजाने से उनके द्वारा साहित्य प्रकाशन की भावना से संस्थापित 'विरजानन्द वैदिक संस्थान' का कार्य प्रायः ठप्प-सा हो गया।

उनके प्रिय भक्त-शिष्य श्री पं० सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए० के प्रयत्न से श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती ने संस्थान की अध्यक्षता स्वीकार कर इसको पुनरुज्जीवित किया। तब से संस्थान उपयुक्त साहित्य के प्रकाशन में कार्यरत है।

संचालकों का संकल्प है, कि श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी महाराज का प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्य—जो अब अनुपलब्ध है, प्रयत्नपूर्वक खोजकर—प्रकाशित कराया जाय। उसी संकल्प के अनुसार प्रस्तुत रचना का प्रकाशन है। पाठक इससे ज्ञानवृद्धि में उपयुक्त लाभ उठा सकेंगे।

उदवीर शास्त्री
सम्पादक

वैसाख पूर्णिमा, गुरुवार, संवत् २०३० वि०।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

नारद-नीति

वैशम्पायन उवाच—

अथ तत्रोपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च भारत ॥१॥
वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः ।
इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित् ॥२॥
न्यायविद्धर्मतत्त्वज्ञः षडंगविदनुत्तमः ।
ऐक्यसंयोगनानात्वसमवायविशारदः ॥३॥
वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान्नयवित्कविः ।
परापरविभागज्ञः प्रमाणकृतनिश्चयः ॥४॥
पञ्चावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् ।
उत्तरोत्तरवक्ता च वदतोऽपि बृहस्पतेः ॥५॥
धर्मकामार्थमोक्षेषु यथावत्कृतनिश्चयः ।
तथा भुवनकोशस्य सर्वस्याऽस्य महामतिः ॥६॥
प्रत्यक्षदर्शी लोकस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
सांख्ययोगविभागज्ञो निर्विवित्सुः सुरासुरान् ॥७॥
सन्धिविग्रहतत्त्वज्ञस्त्वनुमानविभागवित् ।
षाड्गुण्यविधियुक्तश्च सर्वशास्त्रविशारदः ॥८॥
युद्धगान्धर्वसेवी च सर्वत्राऽप्रतिघस्तथा ।
एतैश्चाऽन्यैश्च बहुभिर्युक्तो गुणगणैर्मुनिः ॥९॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकाननुचरन्सर्वानागमत्तां सभां नृप ।
नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥१०॥
पारिजातेन राजेन्द्र पर्वतेन च धीमता ।
सुमुखेन च सौम्येन देवर्षिरमितद्युतिः ॥११॥
सभास्थान्पाण्डवान्द्रष्टुं प्रीयमाणो मनोजवः ।
जयाशीर्भिस्तु तं विप्रो धर्मराजानमार्चयत् ॥१२॥

उस सभा में पाण्डवों के बैठे बैठे तथा बड़े बड़े महात्माओं और गन्धर्वों के बैठे बैठे, हे भारत ! वेदों और उपनिषदों का वेत्ता ऋषि, सुरसमूह से पूजित, इतिहास तथा पुराण के जानने वाला, पुराकल्प [पुराने रीतिरिवाजों] का विशेष ज्ञाता, न्याय जानने वाला, धर्म के तत्त्वों का जानकार, वेदों के छह अंगों का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता; एकता, संयोग, नानात्व, समवाय तथा मेल में निपुण, प्रौढ़ वक्ता, मेधाबुद्धिसम्पन्न, स्मृतिमान्, नीतिज्ञ, कवि, पर तथा अपर के विभागों का ज्ञाता, प्रमाणों के द्वारा निश्चय करने कराने वाला, पञ्च अवयवों वाले वाक्य के गुणदोषों का जानने वाला, बोलते हुए बृहस्पति के भी उत्तरोत्तर बोलने वाला, धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष के विषय में यथायोग्य यथार्थ निश्चय वाला, इस सम्पूर्ण भुवन कोश का महाज्ञाता, इस संसार के ऊपर नीचे एवं तिरछे का प्रत्यक्षदर्शी। सांख्य योग के उपयोग का ज्ञाता, तथा देवों और असुरों को निर्वेद–वैराग्य कराने का इच्छुक, सन्धि एवं विग्रह का तत्त्वज्ञ, अनुमान का भेदज्ञ, षाड्गुण्य के विधान का जानकार, सब शास्त्रों में निपुण, युद्ध तथा गान्धर्व विद्या का सेवी, सर्वत्र (सर्व-शास्त्रों में) अप्रतिहतगति, इन तथा अन्य अनेक गुणगणों से युक्त, अमित कान्ति वाला, देवर्षि महातेजस्वी, नारद मुनि, हे नृप ! पारिजात और बुद्धिमान पर्वत तथा सौम्य सुमुख नामक ऋषियों के साथ, हे राजेन्द्र ! सब लोकों में विचरता हुआ, उस सभा में सभास्थ पाण्डवों को देखने के लिये आया। मनोवेगी प्रसन्नचित ब्राह्मण ने उस धर्म्मराज को आशीर्वादों से सत्कृत किया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[राजसूय यज्ञ के उपलक्ष्य में असंख्य ब्राह्मणों को भोजन कराके अनेक ऋषिमुनियों तथा राजाओं से घिरे हुए युधिष्ठिर सभा में बैठे हैं, कि महामुनि नारद वहां आए। नारद के जो विशेषण यहां दिए गए हैं, उनसे विदित होता है कि वे महाविद्वान् थे। नारद को इस सन्दर्भ में ऋषि (२) मुनि (६) तथा देवर्षि (११) कहा गया है, दूसरे श्लोक में उन्हें 'ऋषिः सुरगणार्चितः' कहा गया है। इसका भी अर्थ देवर्षि होता है। नीति के उपदेशक को जो कुछ जानना चाहिए, नारद को उन सबका ज्ञाता बतलाया गया है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। अतः सबसे पहला विशेषण 'वेदोपनिषदां वेत्ता'=वेदों तथा उपनिषदों का ज्ञाता, दिया गया है। उपनिषदों का वेत्ता कहने का प्रयोजन यह है, कि वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाला था। अर्थात् सात्विक था। इस एक विशेषण से उसकी उपदिष्ट राजनीति की प्रवृत्ति समझी जा सकती है। वह सामान्यजन नहीं था, ऋषि था, नीतितत्त्वों के रहस्यों का प्रत्यक्ष-दर्शी था। इतिहास के साथ पुराण का भी जानकार था। पुराण का अर्थ है—सृष्टि में घटित होने वाली नैसर्गिक घटनाएं। अर्थात् सृष्टिक्रम तथा सृष्टिनियम का भी विद्वान् था। विषय, संशय, पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष तथा सङ्गति नामक पञ्चावयवयुक्त को न्याय कहते हैं। नीति का सम्बन्ध अर्थ से है, अतः पुराने आचार्य नीतिशास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं। अर्थ यदि धर्म्म से असंबद्ध हो, तो वह अनेक अनर्थों का स्रष्टा हो सकता है, अतः नीतिकार को धर्म्म-तत्त्वज्ञ भी होना चाहिए। शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा कल्प षडङ्ग हैं। नीति-व्यवहार में एकता की आवश्यकता है। कहां संयोग की, कहां नानात्व=विभेद की और कहां समवाय=सबकी एक में उपयोगिता की आवश्यकता होती है, इसका जानना अनिवार्य है। नारद केवल इनका ज्ञाता ही नहीं है, वरन् वह 'प्रगल्भ वक्ता' है। साथ ही स्मृतिमान् है। दूसरे की बात सुन कर उसे स्मरण रखता है, जिससे उसे अपनी बात समझाने में सुविधा रहती है। अपनी बात कहते हुए भी उसे पूर्वकथित बात स्मरण रहती है। आवश्यकता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने पर वह कविता द्वारा उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है। कवि का एक अर्थ क्रान्तदर्शी होता है। क्रान्तदर्शी=जो आगे होने वाली बात को पहले ही जानले। पहले योरुपीयन युद्ध का होना एक जर्मन विद्वान् ने बहुत पूर्व लिख दिया था। इसका फलित ज्योतिष से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रतिदिन घटित घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाला मनुष्य उन घटनाओं के परिणामस्वरूप भावी घटनाओं को पहले से ही ताड़ लेता है। पर=मुख्य तथा अपर=गौण, अथवा पूर्व-कर्तव्य तथा पश्चात्-कर्तव्य कर्मों के विभाग का ज्ञाता। यथार्थ साधनों द्वारा कर्तव्य का निश्चय करने वाला=प्रमाणकृतनिश्चय है। प्रमाणों में एक अनुमान प्रमाण है। उसके द्वारा जब किसी अन्य को कोई बात समझाने के लिए जो वाक्य बोला जाता है, उसके पांच अवयव होते हैं। १ प्रतिज्ञा, २ हेतु, ३ उदाहरण, ४ उपनय तथा ५ निगमन। किसी पक्ष की स्थापना करना प्रतिज्ञा है। यथा 'सामने के पर्वत में आग हैं।' उस पक्ष की सिद्धि के लिए दी जाने वाली युक्ति को हेतु कहते हैं। यथा उपर्युक्त पक्ष की सिद्धि के लिए कहना —'क्योंकि वहां अविच्छिन्नमूल धूम है।' हेतु तथा प्रतिज्ञा के सम्बन्ध को दृष्टान्त द्वारा कहना उदाहरण है। यथा 'जहां जहां धुआं होता है, वहां वहां आग होती है, जैसे पाकशाला में।' हेतु की पक्ष में (साध्यकी सिद्धि जहां सन्दिग्ध हो, उसे पक्ष कहते हैं, यथा उपर्युक्त में पर्वत पक्ष है) विद्यमानता का निश्चयपूर्वक कथन करना उपनय है। यथा 'यह पर्वत भी अग्निव्याप्य धूमवाला है।' हेत्वादि के साथ प्रतिज्ञा का दोहराना निगमन कहलाता है। यथा 'अग्निव्याप्य धूमवाला होने से यह पर्वत अग्नि वाला है।' इन पांचों के गुणदोषों=साधुता असाधुता का जानने वाला। नीतिज्ञान का दूसरे को उपदेश करने के लिए परार्थानुमान का पूर्व ज्ञान अत्यन्त उपादेय होता है। दूसरों को समझाते हुए वह बृहस्पति को भी मात देता है। तात्पर्य यह, कि वह चतुर्वर्ग—धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष क सम्बन्ध में यथार्थ एवं निश्चयात्मक ज्ञान रखता है। भुवनकोश= भूगोल का भी पण्डित है। इस विषय का उसे पुस्तकी ज्ञान ही नहीं है,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरन् इनका उसे प्रत्यक्ष ज्ञान भी है। सांख्य=ज्ञान, योग=कर्म, इनके उपयोग का ज्ञाता। निर्विवित्सुः सुरासुरान्' देवों और असुरों की विभूतियों से विरक्त अर्थात् सर्वथा निस्स्वार्थ। कई लोग अर्थ करते हैं—देवों एवं असुरों को लड़ाने वाला। यह पूर्वोक्त एवं अगले विशेषणों के होते अशुद्ध हैं। सन्धि=साम, विग्रह=दण्ड, इनके तत्त्व=रहस्य को जानने हारा। अनुमान से अपनी तथा शत्रु की शक्ति को जानकर शत्रुओं में फूट डालने की युक्ति को जानने वाला। पाड्गुण्य=सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय ये छह षड्गुण=षाड्गुण्य हैं। सन्धि=मेल, विग्रह=युद्ध, यान=चढ़ाई, आसन=युद्ध करते करते शत्रु के प्रदेश में ही अवसर की प्रतीक्षा में बैठ जाना। दो समान बल वाले शत्रुओं के प्रति अपने आप को समर्पित कर उनमें मेल न होने देना द्वैधीभाव है। शत्रु से शङ्का होने पर बलवान का सहारा लेना संश्रय=समाश्रय है। संधि-विग्रह तत्त्वज्ञ का अर्थ साम, दान, दण्ड भेद इन चार उपायों का जानने वाला। षाड्गुण्य—सन्धि आदि युद्धोपयोगी छह साधनों का जानने वाला। सर्वविद्या विभाग, युद्ध तथा राग विद्या का प्रेमी, सर्वत्र विना रोकटोक आने जाने वाला। इन विशेषणों को देखकर छान्दोग्योपनिषत् के नारद का स्मरण हो उठता है। सनत्कुमार के पास ब्रह्मविद्या सीखने की अभिलाषा से पहुंचकर नारद कहता है—महाराज! मुझे उपदेश दीजिए। सनत्कुमार के 'क्या पढ़े हो?' इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने कहा—'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानाꣳ वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम्, एतद्भगवोऽध्येमि'॥ (छा० ७।१।२)=भगवन्! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण वेद का वेद (उपनिषत्) पित्र्य=ऋतुविद्या वायुविज्ञान, राशि=गणितादि, दैव=द्युलोक विद्या, निधि=भूगर्भज्ञान, वाकोवाक्य=तर्कशास्त्र, एकायन=नीतिशास्त्र, देवविद्या=निरुक्त अथवा तैंतीस देवों के सम्बन्ध की विद्या, अथवा इन्द्रियविज्ञान,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मविद्या=वेदांगविज्ञान, अथवा आत्म-परमात्म-सम्बन्धी शाब्दिकज्ञान, भूतविद्या=रोगजन्तुविद्या, क्षत्रविद्या=धनुर्वेद, नक्षत्रविद्या=ज्यौतिष, सर्पविद्या, देवजनविद्या=व्यापारियों तथा सामान्य जनोपयोगी विविध विज्ञानों को जानता हूं।

यद्यपि युधिष्ठिर-भवन में आये नारद और छान्दोग्योपनिषत् के ब्रह्म-विद्या जिज्ञासु की अनेक गुणों में समता दीखती है, तथापि वे एक नहीं प्रतीत होते। क्योंकि एक जिज्ञासु है, दूसरा प्रौढ़ वक्ता है। जो भी हो; प्रश्नों द्वारा नीतितत्त्व का उपदेष्टा नारद असामान्य है, सागर को गागर में भर दिखाने का अद्भुत कौशल उस महर्षि ने कर दिखाया है।]

(नाम की इस समानता से यह नहीं समझना चाहिए, कि ये दोनों एक हैं। एक नामवाले दो व्यक्ति भिन्न भिन्न समयों में भी हो सकते हैं और एक समय में भी। इससे पूर्व सभापर्व के चतुर्थ अध्याय में राजा युधिष्ठिर की सभा में दो 'शनक' नामक ऋषियों का होना कहा गया है। एक का उल्लेख दसवें श्लोक में है, और दूसरे का सतरहवें में। इसी भांति हमें छान्दोग्योपनिषत् में उल्लिखित नारद और यह नारद भिन्न प्रतीत होते हैं।)

तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित्।
सहसा पाण्डवश्रेष्ठः प्रत्युत्थायाऽनुजैः सह ॥१३॥
अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा।
तदर्हमासनं तस्मै संप्रदाय यथाविधि ॥१४॥
गां चैव मधुपर्कं च संप्रदायाऽर्घ्यमेव च।
अर्चयामास रत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥१५॥
तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात्।
सोऽर्चितः पाण्डवैः सर्वैर्महर्षिर्वेदपारगः।
धर्मकामार्थसंयुक्तं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरम् ॥१६॥

उस नारद ऋषि को अचानक आया देखकर सर्व कर्तव्यों के जानने वाले पाण्डवश्रेष्ठ [युधिष्ठिर] ने विनयावनत होकर अपने भाइयों के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ उसका प्रत्युत्थान (स्वागत) करके प्रेम से अभिवादन किया। विधिपूर्वक उसके योग्य आसन देकर तथा वाणी बोलकर एवं मधुपर्क तथा अर्घ्य देकर उस धर्म्मवेत्ता (युधिष्ठिर) ने रत्नों तथा सब कामनाओं से उसकी पूजा की। युधिष्ठिर से यथायोग्य पूजा प्राप्त करके और सब पांडवों से सत्कृत होकर वह वेदपारगामी [नारद] सन्तुष्ट हुआ। इसके पश्चात् उसने युधिष्ठिर से धर्म्म-अर्थ तथा काम सम्बन्धी यह प्रश्न किया।

[जब कोई मान्य पुरुष आए तो उसका आसन प्रत्युत्थान, मधुरवाणी, मधुपर्क, अर्घ्य [= हाथ मुंह धोने के लिए जल] तथा पाद्य [= पांव धोने का जल] के द्वारा उसका सत्कार करने का विधान है। जैसा कि मनुजी का भी ऐसा ही आदेश है। वेद में भी अतिथि, विशेष करके वेदपारगामी, विरक्त, लोकोपकारक महात्मा के आने पर इसी प्रकार के सत्कार का विस्तार से विधान है।

इस प्रकरण में आए 'गां' पद का अर्थ हमने 'वाणी से' किया है। 'गो' शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ 'वाणी' भी है। संस्कृत साहित्य में इसका प्रचुर प्रयोग है, उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। नीति का साधारणतया इसी लोक से सम्बन्ध है, अतः नारद ने 'धर्म्म-अर्थ-काम सम्बन्धी प्रश्न किया।]

नारद उवाच—

कच्चिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः।
सुखानि चाऽनुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते ॥१७॥
कच्चिदाचरितं पूर्वैर्नरदेव पितामहैः।
वर्तसे वृत्तिमक्षुद्रां धर्मार्थसहितां त्रिषु ॥१८॥

आपके धन तो सफल होते हैं, और धर्म्म में भी आपका मन लगता है न? सुखों का अनुभव होता है न? और मन ऊब तो नहीं जाता? अपने पूर्वज बाप-दादों के आचरित कार्य्यों में, हे राजन्! उत्तम मध्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधम पुरुषों के प्रति धर्म्म और अर्थ से युक्त उदार व्यवहार का वर्ताव तो करता है न ?

[राजा के पास विपुल धन होता है। अनेकों का धन विलासादि निकृष्ट कार्य्यों में व्यर्थ व्यय होता है। प्रजापोषण में, अभावग्रस्तों की अभावपूर्त्ति में धन का व्यय सफल व्यय है, जैसा कि वेद में कहा है—"ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः" (ऋ० ५।४२।८) जो अश्वों के दाता हैं, अथवा गौओं के दाता हैं, अथवा वस्त्रों के दाता हैं, धन उन्हीं को सफल हैं। अश्व शब्द से यातायात के साधन अभिप्रेत हैं। गोशब्द का तात्पर्य दूध देने वाले पशु, अन्नोत्पादक साधन है, तथा वस्त्र शब्द का अर्थ है, ढकने के साधन अर्थात् वस्त्र तथा गृह। अन्नवस्त्र यातायात के साधन, अन्यों के लिए जुटाने वाले जनों के धन सचमुच सफल हैं। इसके आगे इसी नीति में कहा है—'दत्तभुक्तफलं धनम्'=धन का फल दान तथा भोग है, इसमें भी पहले दान का स्थान है। अर्थात् धन की सफलता दूसरों के उपयोग में है।

मनु ने कहा है—'येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति—जिससे पिता पितामह चलते रहें, सज्जनों के उस मार्ग से मनुष्य को चलना चाहिये, उस मार्ग से जाता हुआ मनुष्य हानि नहीं उठाता, क्योंकि वह परीक्षित मार्ग है।]

कच्चिदर्थेन वा धर्म धर्मेणाऽर्थमथापि वा।
उभौ वा प्रीतिसारेण न कामेन प्रबाधसे ॥१९॥
कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतां वर।
विभज्य काले कालज्ञः सदा वरद सेवसे ॥२०॥

क्या अर्थ के (लोभ) द्वारा धर्म्म का घात तो नहीं करते हो, अथवा धर्म्म के (जोश) द्वारा अर्थ का विघात तो नहीं करते हो ? अथवा प्रीतिपूर्ण काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों का नाश तो नहीं करते हो ? हे विजयिश्रेष्ठ ! हे सदा वरद ! कालज्ञ (समयानुसार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित कार्य्य करने का ज्ञानी) होकर, समय का विभाग करके धर्म्म अर्थ तथा काम का सेवन तो करते हो न ?

[धन के लोभ से धर्म्म का परित्याग नीच जन करते हैं। धर्म्म के जोश में आकर अर्थ से विरक्ति विरक्त जन ही दिखाया करते हैं, तथा तात्कालिक विषयसुख की लालसा में फंस कर कामी जन धर्म्म और अर्थ का विनाश किया करते हैं। यद्यपि ये तीनों—धर्म्म, अर्थ, काम —एक दूसरे के विरोधी हैं, तथापि यदि इसका समय के अनुसार राजा ...सेवन करे, तो ये पारस्परिक विरोध का परित्याग कर देते हैं। जैसा कि आचार्य्य दक्ष ने कहा है—'पूर्वाह्ण तु चरेद्धर्म मध्याह्ने ऽर्थमुपार्जयेत्। सायाह्ने चाचरेत्काममित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ अर्थात् प्रातःकाल धर्म्मानुष्ठान=सन्ध्यावन्दन, यज्ञयाग, स्वाध्याय आदि करे। मध्याह्नमें अर्थ का उपार्जन अर्थात् प्रार्थियो=अर्थिप्रत्यर्थियों के वाद-विवाद सुन तथा उनका धर्म्मानुसार निर्णय करे। रात्रि को काम,=धर्म्म से अविरुद्ध एवं अर्थ से मर्य्यादित गृहस्थ सुख का उपभोग करे। ऐसा वैदिक प्रवाद है। तात्पर्य्य यह, कि सब कार्य्य समयानुसार करे।]

कच्चिद्राजगुणैः षड्भिः सप्तोपायांस्तथाऽनघ।
बलाबलं तथा सम्यक्चतुर्दश परीक्षसे ॥२१॥

हे अनघ=निर्दोष ! क्या छह राजोचित गुणों के द्वारा सात उपायों तथा बलाबल और चौदह की परीक्षा तो करते हो न ?

[राजा को चौदह दोषों से सदा मुक्त रहना चाहिये, वे चौदह दोष इसी अध्याय के १०७ वें श्लोक से १०९ वें तक में गिनाए गए हैं, उनका वहां ही विवरण लिखेंगे। अथवा कामन्दकोक्त पराजय के मूलभूत बीस दोषों से राजा को रहित होना चाहिए। वे दोष ये हैं—"बालो वृद्धो दीर्घरोगी तथा ज्ञातिबहिष्कृतः। भीरुको भीरुजनको लब्धो लुब्धजनस्तथा ॥ विरुक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वपि सक्तिमान्। अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ दैवोपहतकश्चैव दैवचिन्तक एव च। दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसङ्कुलः। अदेशस्थो बहुरिपुर्युक्तो कालेन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश्च सः ।। सत्यधर्म्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी। एतैः सन्धि न कुर्वीत विग्रही स्यात्तु केवलम्"।। अर्थात् बालक, बूढ़ा, दीर्घरोगी, ज्ञाति-च्युत, भीरु (डरपोक) भीरु सेवकों वाला, लोभी, लोभी परिचारकों वाला, विरक्तस्वभाव वाला, विषयों में आसक्ति वाला, गुप्त मन्त्रणा में एकाग्रचित्त न रहने वाला, देवब्राह्मणों (निस्वार्थ ज्ञानियों) का निन्दक, भाग्यहीन तथा सदा भाग्य की चिन्ता में पड़ा रहने वाला, दुर्भिक्षरूपी विपत्ति से ग्रस्त, सेनानाश से युक्त, देश में न रहने वाला (अथवा वे ठिकाने रहने वाला), बहुत शत्रुओं वाला, काल से युक्त (मरणासन्न), सत्य-धर्म्म से रहित, ये बीस मनुष्य ऐसे हैं, जिनसे राजा कभी भी सन्धि न करे, इनके साथ तो केवल झगड़ा करे। तात्पर्य्य यह है, कि ऐसों के साथ मेल-मिलाप दोषावह है।

राजोचित छह गुण ये हैं—'वक्ता, प्रगल्भो, मेधावी, स्मृतिमान्, नयवित्, कविः' (४र्थश्लोक) वक्ता=मन्त्रियों, राजदूतों, गुप्तचरों एवं अन्य राजकर्मचारियों को यथायोग्य आदेश देने में समर्थ हो। प्रगल्भ =शक्तिशाली हो, जिसके समक्ष—प्रत्यक्ष या परोक्ष में—कोई भी धृष्ठता न कर सकें, और जो शत्रुओं को दबाने में अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सके। मेधावी जो बुद्धिमान हो। स्मृतिमान्=जिसे पहले की कही सुनी पढ़ी सब बात स्मरण हो। नयवित्=नीतिशास्त्र का पण्डित तथा तर्क प्रवीण हो। कविः=क्रान्तदर्शी, आगे आने वाली घटनाओं का जो भान, ज्ञान, अनुमान करने में कुशल हो।

सात उपाय—साम, दान, दण्ड, भेद, मन्त्र, औषध, तथा इन्द्र-जाल। मीठी मीठी बातों से शत्रु को वश करना साम है। धनादिक देना दान; दमन करना दण्ड; विरोधिपक्ष में फूट डालना भेद; गुप्त मन्त्रणा मन्त्र; विषकन्या, आदि शत्रुघातक उपाय औषध, तथा शत्रु को अपनी मोहिनी शक्ति (मेस्मेरिजम आदि) के द्वारा विमुग्ध करना इन्द्रजाल है। राजा तथा राज्यकर्णधारों को इन उपायों के प्रयोग का पुष्कल ज्ञान होना चाहिए। बलाबल—अपने सामर्थ्य और असामर्थ्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा शत्रु की शक्ति एवं अशक्ति की परीक्षा सदा रखनी चाहिए।

चतुर्दश=चौदह। अनेक नीति ग्रन्थों में आता है—देशो दुर्गः हस्ति-वाजियोधाकृष्यधिकारिणः। अन्तःपुरान्नगणनाः शास्त्रलेख्यधनासवाः ॥ परीक्ष्य ह्यधिपास्तेषां चतुर्दश नरेश्वरैः। अर्थात् राजाओं को इन चौदह की परीक्षा करनी चाहिए (१) देश (२) दुर्ग, (३) हाथी (४) घोड़े (५) योधा (६) क्षितियों के अधिकारी (७) अन्तःपुर (८) अन्न, युद्ध तथा शान्ति दोनों कालों में देश के अन्दर पर्य्याप्त अन्न रहना चाहिए। (९) जनगणना (१०) शास्त्र—शास्त्र का प्रचारादि कैसा है, अथवा स्वकीय, परकीय देशों में किस किस शास्त्र का प्रचार है। लेख्य=आय, व्यय तथा निर्णयों को लेखबद्ध रखना (१२) धन=कोश में धन पर्य्याप्त है वा नहीं (१३) आसव=देश में अनुचित रीति से कहां कहां मादक द्रव्यों का उत्पादन होता है, अथवा मद्यतुल्य शत्रुओं का विचार। यदि 'असवः' पाठ हो तो प्राण=सेना के बलाबल का ज्ञान, तथा (१४) इन सब विभागों के अध्यक्षों की योग्यता आदि का ज्ञान। इन सबके ज्ञान के बिना राज्य सदा सङ्कट में रहता है।

कच्चिदात्मानमन्वीक्ष्य परांश्च जयतां वर।
तथा संधाय कर्माणि अष्टौ भारत सेवसे ॥२२॥

हे जिष्णुप्रवर भारत! क्या अपने बल तथा शत्रुओं की जांच कर, तथा शत्रुओं के साथ अवसरोचित सन्धि आदि करके आठ कर्म्मों को सेवते हो क्या?

[आठ कर्म्म—कृषिर्वणिक्पथो दुर्गः सेतुः कुंजरबन्धनम्। खन्याकरकरादानं शून्यानां च निवेशनम्। अष्टौ सन्धानकर्म्माणि प्रयुक्तानि मनीषिभिः ॥=(१) कृषि, (२) वणिक्पथ=व्यापारमार्ग, यदि व्यापारियों के लिए जाने आने के साधन न हों अथवा वे निरापद न हों, तो राज्य-श्री की वृद्धि नहीं हो सकती। (३) दुर्ग (४) सेतु=नदी आदि पर उचित स्थानों पर पुल, अथवा आवश्यक स्थानों में जल रोक कर संचित करने के लिए अपेक्षित बांध (५) कुञ्जरबन्धनम्=हाथियों का बांध

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना। हाथी पद यहां कृषि तथा जनता आदि के विघातक सभी जंगली जन्तुओं का उपलक्षण है।। (३) खनि=हीरे रत्नादि की कानों से प्राप्तव्य का प्राप्त करना (७) आकर=सोने चांदी आदि की कानों से प्राप्तव्य कर आदि का प्राप्त करना (८) रिक्त तथा उजड़े स्थानों का फिर से आवासित करना। प्रजा को निरापद तथा राज्य को सुसम्पन्न करना राजा का आवश्यक कर्त्तव्य है।

कच्चित्प्रकृतयः सप्त न लुप्ता भरतर्षभ।
आढ्यास्तथाव्यसनिनः स्वनुरक्ताश्च सर्वशः ॥२३॥

हे भरतश्रेष्ठ! कहीं तेरी सात प्रकृतियां (विरोधियों के द्वारा) अपनी वास्तविक स्थिति को खो तो नहीं बैठीं? तथा धनसम्पन्न होकर व्यसनी तो नहीं बन गई? वे तुझ पर बहुत अनुरक्त तो हैं न?

[सात प्रकृतियां—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोपि च ॥=स्वामी, अमात्य (मन्त्री, सचिव आदि) मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, बल=सेना, ये राज्य के अङ्ग सात प्रकृतियां हैं। नागरिकों की श्रेणियां (पेशों के अनुसार) भी प्रकृति के अन्तर्गत हैं।

स्वामी भी सात प्रकार के होते हैं—दुर्गाध्यक्षो बलाध्यक्षो धर्म्माध्यक्षश्चमूपतिः। पुरोधा वैद्यदैवज्ञौ सप्त प्रकृतयः स्मृताः ॥ (१) दुर्गों का अध्यक्ष (२) सेनाओं की भोजन व्यवस्था करने वाला (३) धर्म्माध्यक्ष=धर्म विभाग का अध्यक्ष, न्याय विभाग का अध्यक्ष, तथा प्रजा में सदाचारादि सद्भावनाओं के स्थिर रखने वाले विभाग का अध्यक्ष, दानाध्यक्ष (४) चमूपति=सेनापति (५) पुरोहित=राज्यकार्य में मुख्य परामर्शदाता, राज्य पर आने वालीं या संभावित दैवी या मानुषी आपत्तियों का उनके आक्रमण से पूर्व प्रतिविधान करने में निपुण (६) वैद्य=स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष तथा (७) दैवज्ञ=ज्योतिर्विद्या में कुशल, Astronomical तथा Metreological आदि विभागों का अध्यक्ष।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य के सात मुख्य विभागों के ये सात अध्यक्ष स्वामिरूप प्रकृति हैं। मूल सात प्रकृतियों में कथित 'सुहृत्' का अर्थ मित्र है। राजनीति-शास्त्र में इसका अर्थ न्याय-अन्याय का विवेचन करने वाली परिषद् हैं।

राजा का मुख्य कर्त्तव्य है, कि इन स्वामी आदि सातों प्रकृतियों को सदा अपने अनुकूल रखे। तथा इस बात का भी ध्यान रखे कि पौर श्रेणियां धनसम्पन्न होकर दुर्व्यसनों में न फंस जाएं। सदा ऐसी व्यवस्था रखे, कि वे सदा अनुरक्त=प्रेम करने वाली बनी रहें।

कच्चिन्न कृतकैर्दूतैर्यै चाऽप्यपरिशंकिताः।
त्वत्तो वा तव चाऽमात्यैर्भिद्यते मन्त्रितं तथा ॥२४॥

कहीं बनावटी दूतों के द्वारा वे लोग तो तुझ से नहीं फोड़े जाते, जो सर्वथा अशङ्कनीय=विश्वासपात्र हैं। तथा तुझसे बनावटी=कृपटी अमात्यों द्वारा तेरी गुप्त मन्त्रणा प्रकट तो नहीं कर दी जाती? [राजा को ऐसे बगुला भगतों से सावधान रहना चाहिए। ऐसे बगुला भगत दोनों पक्षों को लूटते हैं। कहीं कहीं 'कृतकै'—के स्थान में 'तकैंदूतैर्वा' पाठ है, वहां अर्थ होगा—कुतर्की दूतों के द्वारा—।]

मित्रोदासीनशत्रूणां कच्चिद्वेत्सि चिकीर्षितम्।
कच्चित्संधि यथाकालं विग्रहं चोपसेवसे ॥२५॥

क्या तू मित्र, उदासीन तथा शत्रुओं की चेष्टाओं को जानता है? क्या तू यथाकाल सन्धि युद्ध का व्यवहार कर लेता है न?

[अर्थात् राजा को न तो सदा मृदु ही रहना चाहिए और न ही सदा कठोर—युद्धप्रिय ही रहना चाहिए।]

कच्चिद्वृत्तिमुदासीने मध्यमे चाऽनुमन्यसे।
कच्चिदात्मसमा वृद्धाः शुद्धाः संबोधनक्षमाः ॥२६॥
कुलीनाश्चाऽनुरक्ताश्च कृतास्ते वीर मंत्रिणः।

क्या तू मध्यम=दोनों पक्षों से वेतन लेने वाले उदासीन के प्रति वृत्ति=तुल्यता का व्यवहार तो करता है न? क्या तू ने अपने समान ज्ञान वयोवृद्धों को जो शुद्ध=पवित्राचार व्यवहार वाले तथा संबोधन-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षम=जिनसे हृदय की बात कही जा सके अथवा जो सन्मार्ग बताने में समर्थ हों, तथा जो कुलीन तथा तेरे अनुरागी हैं, हे वीर ! ऐसे मन्त्री नियत किये हैं न ? [कहीं २ 'शुद्धाः संबोधनक्षमाः' के स्थान में 'शुचयो जीवितक्षमाः' पाठ है। तब अर्थ होगा— व्यवहार में शुद्ध तथा विपद्-ग्रस्त राजा को विपद् से रक्षित करके पुनर्जीवन देने में समर्थ।]

विजयो मन्त्रमूलो हि राज्ञो भवति भारत ॥२७॥
कच्चित्संवृतमन्त्रैस्तैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः।
राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिर्न विलुप्यते ॥२८॥

यतः, हे भारत ! राजा के विजय का मूल मन्त्र=गुप्त सुरक्षित विचार ही होता है। क्या सुरक्षित गुप्त मन्त्रणा वाले, नीतिशास्त्र विचक्षण तेरे उन अमात्यों के द्वारा सुरक्षित राष्ट्र शत्रु से विलुप्त तो नहीं किया जाता ?

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित्काले विबुध्यसे।
कच्चिच्चाऽपररात्रेषु चिन्तयस्यर्थमर्थवित् ॥२९॥

तू कहीं सर्वथा सोया तो नहीं रहता (अर्थात् असावधान तो नहीं रहता) समय पर जाग तो जाता है न ? रात्रि के पिछले पहरों में, हे अर्थ-(आगम-)ज्ञ ! अर्थ का विचार तो करता है न ?

[ऋग्वेद में आता है—'आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन (१।१२५।३) मैं आज प्रातः ही इष्टि=प्रभुचिन्तन= धर्म्म के द्वारा धनयुक्त रथ के सुकर्म्मा पुत्र को चाहता हुआ सर्वथा प्राप्त करता हूं। अर्थात् प्रातः काल भगवान् का भजन, अर्थ-चिन्तन, सुकृत-सन्तान-याचन करना चाहिए। मनु जी ने भी कहा है—ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानुचिन्तयेत् (४।९२) प्रातःकाल मनुष्य जागे तथा धर्म्म और अर्थ का अवस्थानुसार विचार करे।

नारद ने इस बात को प्रश्न-मुख से कहा है। नारद के इन प्रश्नों में मनु की छाप बहुत है। इस प्रश्न का भाव इसी नीति में आगे पुनः शब्दान्तरों में दोहराया है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो न राष्ट्रं परिधावति ।।३०।।

तू अकेला तो विचार नहीं करता ? गुप्त मन्त्रणा बहुतों के साथ तो नहीं करता ? कहीं तेरा गुप्त रूप से मन्त्रित विचार राष्ट्र भर में तो नहीं फैल जाता ?

[अकेले की सम्मति की अपेक्षा दो की अच्छी होती है । 'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रो'=छह कानों में गया विचार गुप्त नहीं रहता, अतः बहुतों के साथ भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

कच्चिदर्थान्विनिश्चित्य लघुमूलान्महोदयान् ।
क्षिप्रमारभसे कर्तुं न विघ्नयसि तादृशान् ।।३१।।

क्या तू छोटे मूल वाले, किन्तु बड़े परिणाम वाले अर्थों=अर्थप्राप्ति के उपायों का विचार करके उनका शीघ्र अनुष्ठान आरम्भ कर देता है ? उनमें विघ्न तों नहीं होने देता ?

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः परोक्षास्ते विशङ्किताः ।
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टाः संसृष्टं चाऽत्र कारणम् ।।३२।।

कहीं सभी कर्मान्त=कर्म्म परिणाम तुझ से परोक्ष=ओझल, अत एव शङ्कास्पद तो नहीं है ? अथवा सभी उत्तम रीति से संपन्न होते हैं ? क्योंकि इसमें संसर्ग=सब पर दृष्टि रखना ही कारण है । इस श्लोक का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—क्या तेरे सभी कर्म्मान्त= कार्य्यबद्ध प्रजावर्ग तुझ से परोक्ष=अज्ञात और विशङ्कित तो नहीं हैं ? अथवा सभी अत्यन्त प्रेमी हैं । क्योंकि प्रेम ही इसमें हेतु है ।

आप्तैरलब्धैः क्रमिकैस्ते च कच्चिदनुष्ठिताः ।
कच्चिद्राजन्कृतान्येव कृतप्रायाणि वा पुनः ।
विदुस्ते वीर कर्माणि नानवाप्तानि कानिचित् ।।३३।।

वे तो कर्म्मान्त आप्त, लोभरहित क्रमागत (कर्मचारियों) द्वारा अनुष्ठित किये जाते हैं न ?

हे राजन् ! तेरे समाप्त किये हुओं अथवा समाप्त होने वाले ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म्मों को लोग जान पाते हैं न ? हे वीर ! कहीं तेरे किन्हीं असमाप्त कार्यों को तो लोग नहीं जान लेते ?

[राजा ने कोई कार्य्य किया है, इसका ज्ञान उसके परिणाम से होना चाहिये, न कि करने से पूर्व उसका सर्वत्र प्रचार हो जाए।]

कच्चित्कारणिका धर्मे सर्वशास्त्रेषु कोविदाः।
कारयन्ति कुमारांश्च योधमुख्यांश्च सर्वशः ॥३४॥

क्या सर्वशास्त्र विशारद कारणिक=शिक्षक ही कुमारों एवं प्रधान योधाओं को सर्वप्रकार से धर्म्मविषयक ज्ञान कराते हैं न ?

कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकं क्रीणासि पण्डितम्।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं परम् ॥३५॥

क्या तू हजारों मूर्खों के बदले एक पण्डित=ज्ञानी को खरीद लेता है न ? क्योंकि अर्थ संकटों में पण्डित ही परम कल्याण कर सकता है।

मनु जी ने कहा भी है—'एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः। स विज्ञेयो परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्। सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्म्ममतद्विदः। तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृन्नुगच्छति ॥ (१२।११३-११५)=वेदों का जानने वाला द्विजोत्तम=संन्यासी अकेला भी जिसको धर्म्म निश्चित करे, उसे सर्वोत्तम धर्म्म मानना चाहिए; न कि हजारों मूर्खों का बतलाया हुआ ॥ क्योंकि व्रतरहित वेदानभिज्ञ, केवल जन्म मात्र का अभिमान करने वाले, हजारों के इकट्ठे होने पर भी परिषत् नहीं बन सकती ॥ वरन् ऐसे धर्मज्ञान-शून्य मूर्ख जिसको धर्म्म बताएं, वह पाप सैकड़ों प्रकार का होकर उस धर्म्माभास पाप के वक्ताओं को प्राप्त होता है ॥

अतः धर्म्म निर्णय के लिए इस बात का विशेष विचार करना होता है, कि धर्म्म का व्यवस्थापक वेदवेत्ता, धार्मिक, सदाचारी सज्जन होना चाहिए। मनुजी एक की व्यवस्था की अपेक्षा परिषत् की कीहुई को श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु वह भी विद्वानों की परिषत् होनी चाहिए। मनुप्रोक्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म्म-परिषत् के स्वरूपज्ञान के लिए [१२।११०,११२। श्लोक देखिए।]

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दान्तो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥३६॥

क्योंकि एक भी मेधावी, शूर, संयमी, चतुर अमात्य राजा तथा राजपुत्र को बड़ी भारी लक्ष्मी प्राप्त करा सकता है।

[वर्तमान महाभारत में इस श्लोक की संख्या ३७ वीं हैं किन्तु-प्रकरणसंगति के विचार से इसे हमने ३६ वां बनाया है। और ३६ वें को ३७ वां]

कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः ।
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥३७॥

क्या तेरे सभी दुर्ग, धन, धान्य, आयुधों और जल, तथा यन्त्रों, शिल्पियों=कारीगरों तथा धनुर्धरों से परिपूर्ण तो हैं ?

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥३८॥

क्या तू परपक्ष के अठारह तथा स्वपक्ष के पन्द्रह तीर्थों को—एक दूसरे से अविज्ञात तीन तीन गुप्तचरों के द्वारा—जानता है ?

[नीतिशास्त्रों में निम्नलिखित व्यक्तियों को तीर्थ कहा गया है—'मन्त्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः। पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोऽन्तर्वेशिकस्तथा ॥१॥ कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा। कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥२॥ प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्य्यनिर्माणकृत्तथा। धर्म्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपालः पञ्चदशः ॥३॥ षोडशो दुर्गपालश्च राष्ट्रान्तपालकस्तथा। अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ॥४॥ चारान् विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्च परस्य च। पाखण्डादीनविज्ञातानन्योन्यमितरेष्वपि ॥५॥ मन्त्रिणं युवराजं च हित्वा स्वेषु पुरोहितम्।'=मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तःपुर में नियुक्त सेवक, कारागार (जेल) का अधिकारी, द्रव्यसंग्रहकर्त्ता, धनों का कार्य्याकार्य्य में विनियुक्त करने वाला Investing officer,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेष्टा-कर्त्तव्याकर्त्तव्य की आज्ञा करने वाला, नगराध्यक्ष, कार्य्यनिर्माण कृत=योजनाएं बनाने वाला, धर्म्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल= पोलीसविभाग का प्रधान, दुर्गपाल, राष्ट्रांतपाल=सीमाप्रांताध्यक्ष, अटवीपाल=वनविभागाध्यक्ष, यह अठारह तीर्थ हैं, इन पराये तथा अपने तीर्थों में, पाखण्डियों तथा दूसरों को एक दूसरे के जाने विना गुप्तचरों को विचरवाए। मन्त्री, युवराज तथा पुरोहित के अतिरिक्त शेष पन्द्रह स्वपक्ष के तीर्थ हैं।

तात्पर्य्य यह है, कि गुप्तचर विभाग अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं प्रामाणिक होना चाहिए। गुप्तचर भी एक दूसरे को न जानें]

कच्चिद् द्विषामविदितः प्रतिपन्नश्च सर्वदा।
नित्ययुक्तो रिपून्सर्वान्वीक्षसे रिपुसूदन ॥३९॥

हे रिपुसूदन=शत्रु विनाशक! क्या तू शत्रुओं से अज्ञात तथा सर्वदा प्रतिपन्न=सावधान एवं नित्य उद्योगी होकर सब शत्रुओं को दृष्टि में रखता है?

['प्रतिपन्नः' के स्थान में कहीं 'प्रतियत्तः' पाठ [, उसका अर्थ है—शत्रुओं के प्रतीकार में तत्पर]

कच्चिद् विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः।
अनसूयुरनुप्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥४०॥

क्या अपने विनय सम्पन्न=सुशिक्षित, कुलीन, वहुश्रुत, महाविद्वान्, अनसूयु=निन्दा तथा ईर्ष्या न करने वाले, अनुप्रष्टा=शास्त्र विचार में प्रवीण पुरोहित का भी तुमने सत्कार किया है?

[अनुप्रष्टा के स्थान में 'असंकीर्णः' पाठ भी कहीं कहीं है। उसका अर्थ है—सदसद्विवेकशील अथवा उदारहृदय।

[पुरोहित के गुणों का यह अतिसंक्षेप में निरूपण है।]

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥४१॥

क्या अग्नियों के लिए नियुक्त, विधि का जानने वाला, बुद्धिमान्

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल स्वभाव [पुरोहित] आपके हुत=किये जा चुके होम तथा होष्य-माण=भविष्यत् में किये जाने वाले होम के विषय में सदा सूचना देता रहता है ? [राजा राज्यकार्य्य के कारण अनेक वार अपने देवयज्ञ= हवन आदि नहीं कर सकते, जो प्रत्येक गृहस्थ का अनिवार्य्य कर्त्तव्य है। ऋषियों ने उसके लिए व्यवस्था करदी है, कि राजा इस कार्य्य के लिए एक विद्वान् को नियत करदे। उसका कर्त्तव्य है, कि राजा को इसकी सदा सूचना देता रहे, ताकि राजा निश्चिन्त रहे।

इसका एक भाव और भी है—पुरोहित राजा की दैवी मानुषी सब प्रकार की आपत्तियों का प्रतिहर्त्ता होता है, अतः पुरोहित राजा को नित्य वतलाता रहे, कि कौन कौन विरोधी दूर कर दिये गये और किस किस का होम करना अभी शेष है।]

कच्चिदङ्गेषु निष्णातो ज्योतिषः प्रतिपादकः।
उत्पातेषु हि सर्वेषु दैवज्ञः कुशलस्तव ॥४२॥

क्या तेरा दैवज्ञ=ज्योतिषी Political Astronomer Royal भूगोल खगोल के विविध अङ्गों में पारङ्गत है ? अथवा शरीर के विविध अङ्गों की चेष्टा का भाव जान सकता है ? क्या वह सभी आने वाले उत्पातों में ज्ञान-प्रकाश का प्रतिपादन करने में समर्थ है ?

[इस श्लोक को समझने में प्रायः सभी टीकाकारों को भ्रांति हुई है। अनेकों ने इसका अभिप्राय समझा है, कि राजा के पास फलित ज्योतिषी होना चाहिए, जो मनुष्य के हाथ पांव आदि की रेखाओं से उनके भावी जीवन तथा गत जीवन में घटिष्यमाण तथा घटित घटनाओं को वतलासके, जो राहु केतु मङ्गल आदि ग्रह की गति विधि एवं शकुनों के आधार से, उत्पातों को वतलासके, इत्यादि। हमारा इसपर कथन यह है, कि यह अर्थ निराधार है। भारत विभाजन से पूर्व भारत में लगभग साढ़े छह सौ राज्य थे, प्रायः सभी के पास फलित ज्योतिषी थे, किन्तु एक भी ज्योतिषी ने अपने अन्नदाता को उसके भावी विनाश की सूचना न दी, और न ही अपने योगक्षेम की कोई व्यवस्था की। यहां

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक राजज्योतिषी रखने का संकेत है। १९१४ से १९१७ ई० तक होने वाले महायुद्ध का होना, एक जर्मन विद्वान् ने दो ढाई वर्ष पूर्व एक पुस्तक द्वारा बता दिया था। उसका लेख सर्वथा सत्य निकला। राजनैतिक घटनाओं को जो बुद्धिमत्ता एवं तत्परता से निरीक्षण करते रहते हैं, वे आने वाली घटनाओं की पूर्व सूचना दे सकते हैं। प्रत्येक देश में इसप्रकार के ज्योतिषी राज्याश्रय से इस विषय का अध्ययन करके अपने देश के अधिकारियों को विज्ञापित करते रहते हैं।]

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः ॥४३॥
अमात्यानुपधातीताम्पितृपैतामहान्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्श्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु ॥४४॥

क्या तूने मुख्यों को महत्त्वपूर्ण कार्यों में, मध्यमों को मध्यम कार्य्यों में तथा घटिया भृत्यों को घटिया कार्यों में निपुक्त कर रखा है ? छल रहित, बाप दादा के क्रम से आए हुए, शुचि, श्रेष्ठ अमात्यों को श्रेष्ठ कार्य्यों में तो लगाता है न ?

[दोनों श्लोकों में एक ही बात कही है, अतएव दोनों को एक ही स्थान पर रख दिया है।]

कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्विजसे प्रजाः।
राष्ट्रं तवाऽनुशासन्ति मन्त्रिणो भरतर्षभ ॥४५॥

कहीं तू उग्र दण्ड के द्वारा प्रजाओं को अतिमात्र उद्विग्न तो नहीं करता है ? हे भरतश्रेष्ठ ! तेरे मन्त्री ही समस्त राष्ट्र का अनुशासन करते हैं न ?

[श्लोक का उत्तरार्ध बहुत महत्त्वपूर्ण है। आजकल पाश्चात्य तथा उनके दीक्षित भारतीय बहुधा यह प्रलाप किया करते हैं, कि मन्त्रियों द्वारा शासन पश्चिम की देन हैं। उनका यह प्रलाप निराधार है। यह सर्वसम्मत है, कि महाभारत ग्रन्थ के वर्त्तमान आकार में संकलन भी योरुपीय सभ्यता के उन्मेष से बहुत पूर्व हो चुका था। उसमें का यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकार्थ मन्त्रियों द्वारा शासन का विधान कर रहा है।]

कच्चित्त्वां नाऽवजानन्ति याजकाः पतितं यथा।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥४६॥

कहीं याजक लोग तुझको कठोरता से करादि लेने वाला मान पतित की भाँति तिरस्कृत तो नहीं करते ? जिस प्रकार काम के वशीभूत होकर इधर उधर घूमने वाले लम्पट पुरुष से स्त्रियां घृणा करती हैं।

(तात्पर्य्य, यह कि कठोरता द्वारा प्रजापीडन करके प्रजा से धन वटोरने की कुचेष्टा नहीं करनी चाहिए। नीतिकारों ने कहा है—'प्रजा-पीडनसन्तापात् समुद्भूतो महानलः। राज्ञः प्राणान् बलं कोशं नादग्ध्वा विनिवर्तते।'

(प्रजापीडनरूपी सन्ताप से प्रकट हुई महती आग राजा के प्राणों, शक्ति तथा कोश को जलाए विना नहीं बुझती।)

कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च मतिमान्धृतिमाञ्शुचिः।
कुलीनश्चाऽनुरक्तश्च दक्षः सेनापतिस्तथा ॥४७॥
कच्चिद् बलस्य ते मुख्याः सर्वयुद्धविशारदाः।
धृष्टावदाता विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥४८॥

क्या तेरा सेना नायक प्रसन्न (धन मानादि के द्वारा), शूर, बुद्धि-मान, धीर, शुचि, कुलीन कुशल तथा अनुरक्त तो है न ? क्या तेरी सेना के प्रधान अधिकारी सर्वयुद्धों में प्रवीण, प्रौढ़ और छल रहित विक्रमशील तथा तुझ से सत्कार पाकर मानित हैं न ?

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि ॥४९॥
कालातिक्रमणादेते भक्तवेतनयोर्भृता।
भर्तुः कुप्यन्ति यद्भृत्याः सोऽनर्थः सुमहान्स्मृतः ॥५०॥

क्या सेना को देने योग्य भत्ता तथा यथोचित वेतन उचित समय पर दे देते हो, विलम्ब तो नहीं करते हो न ? क्योंकि भत्ता तथा वेतन के कालातिक्रम से (समय पर भत्ता वेतनादि न देने से) दरिद्रता के

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण ये सेवक राजा की ओर कुपित हो उसकी निन्दा करते हैं। इसे महान अनर्थ माना जाता है।

कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति सदा युधि ॥५१॥

क्या प्रधान मन्त्री आदि सभी कुलीन तथा अनुरागी तो हैं न ? क्या तेरे कार्य्यों के लिए सदा प्राण त्यागने में तत्पर रहते हैं ?

कच्चिन्नैको बहूनर्थान्सर्वशः सांपरायिकान्।
अनुशास्ति यथाकाम कामात्मा शासनातिगः ॥५२॥

कहीं कोई संग्रामादि संबन्धी अनेक कार्य्यों को कोई अकेला स्वार्थी, शासन का उल्लङ्घनकारी होकर यथेच्छ तो नहीं चलाता है ?

कच्चित्पुरुषकारेण पुरुषः कर्म शोभयन्।
लभते मानमधिकं भूयो वा भक्तवेतनम् ॥५३॥

क्या अपने पुरुषार्थ से कर्त्तव्य का उत्तमता से करने वाला पुरुष अधिक मान अथवा अधिक वेतन तथा भत्ता प्राप्त करता है न ?

कच्चिद्विद्याविनीतांश्च नराञ्ज्ञानविशारदान्।
यथार्हं गुणतश्चैव दानेनाऽभ्युपपद्यसे ॥५४॥

क्या तू विद्याविनीति, ज्ञानविशारद मनुष्यों का यथायोग्य और उनके गुण के अनुसार दान द्वारा सत्कार करता है न ?

कच्चिद्दारान्मनुष्याणां तवाऽर्थे मृत्युमीयुषाम्।
व्यसनं चाऽभ्युपेतानां बिभर्षि भरतर्षभ ॥५५॥

हे भरतश्रेष्ठ ! क्या तू, तेरे लिए मृत्यु को प्राप्त हुए अथवा संकट को प्राप्त हुए मनुष्यों की पत्नियों (परिवारों) का पालन भरण-पोषण करता है न ?

कच्चिद्भयादुपगतं क्षीणं वा रिपुमागतम्।
युद्धे वा विजितं पार्थ पुत्रवत्परिरक्षसि ॥५६॥

हे पार्थ। क्या तू भय के कारण अथवा क्षीण होने के कारण

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागत शत्रु को तथा युद्ध में हारे हुए को पुत्र समान पालन करता है ?

कच्चित्त्वमेव सर्वस्याः पृथिव्याः पृथिवीपते ।
समश्चाऽनभिशङ्कीयश्च यथा माता यथा पिता ॥५७॥

हे राजन् । क्या तू माता पिता की भांति समस्त राज्य के लिए सम तथा अनभिशङ्कनीय [शङ्कारहित] है ?

कच्चिद्व्यसनिनं शत्रुं निशम्य भरतर्षभ ।
अभियासि जवेनैव समीक्ष्य त्रिविधं बलम् ॥५८॥

हे भरतश्रेष्ठ ! क्या तू शत्रु को व्यसनी विपद्ग्रस्त अथवा मद्यादि व्यसनों में फंसा सुन कर अपने और पराये त्रिविधबल की जांच करके वेग से चढ़ाई कर देता है ?

[तीन प्रकार का वल यह है—१ मन्त्र, २ कोश तथा ३ भृत्य; अथवा प्रभुवल, मन्त्रवल, तथा उत्साहवल । यह मध्यकालीन टीकाकारों के अनुसार है । वेदानन्द के मत में भौमसेना, जलसेना तथा नभसेना तीन प्रकार का वल है । व्यसन निम्नलिखित हैं—'स्त्री द्यूतं मृगया मद्यं नृत्यं गीतं वृथाटनम् । वाद्यं निन्दा दिवास्वापो व्यसनानि नृणां दश ॥, = स्त्री, जुआ, शिकार, मादक द्रव्य, नाचना, गाना, वेकार घूमना, वाजा वजाना, निन्दा तथा दिन को सोना मनुष्यों के ये दस व्यसन हैं ।]

यात्रामारभसे दिष्ट्या प्राप्तकालमरिंदम ।
पार्ष्णिमूलं च विज्ञाय व्यवसायं पराजयम् ॥५९॥

हे शत्रुदमन ! क्या तू पर्ष्णिमूल, व्यवसाय (कर्तव्यनिश्चय तथा कर्तव्य) और पराजय (अपने पक्ष में पराजित न होने के हेतुओं और परपक्ष के अवश्य पराजित होने के हेतुओं को) भली प्रकार जान कर समय आते ही, दिष्टि (राजनैतिक ज्योतिषी) के परामर्श से विजययात्रा आरम्भ कर देता है न ?

[पार्ष्णिमूल शब्द का अर्थ है—पार्ष्णि है मूल जिसका । पार्ष्णि का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है-पीछा। अर्थात् जब शत्रु पर चढ़ाई करे, तो उसका पार्ष्णिमूल—अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश तथा न्यायव्यवस्था ठीक चलती रहनी चाहिए। ऐसा न हो, कि सेना के अन्यत्र व्यस्त रहने पर अमात्यादि के द्वारा राष्ट्र में विद्रोह ज्वाला प्रज्वलित हो कर राजा एवं मूल राष्ट्र ही नष्ट हो जाए। इसके लिए राजा को मित्र शत्रु, मित्र के मित्र, मित्र के शत्रु, शत्रु के शत्रु तथा शत्रु के मित्र इत्यादि का ज्ञान तथा अनुसन्धान होना चाहिए। इसी प्रकार कौन उदासीन = तटस्थ Neutral है, इसका भी ज्ञान आवश्यक है। कामन्दकीयनीतिसार में इसका विस्तार से वर्णन है।]

बलस्य च महाराज दत्त्वा वेतनमग्रतः।
कच्चिच्च बलमुख्येभ्यः परराष्ट्रे परंतप।
उपच्छन्नानि रत्नानि प्रयच्छसि यथार्हतः ॥६०॥

हे महाराज ! हे शत्रुतापक ! क्या सेना का वेतन अगाऊ देकर शत्रु के, राष्ट्र में के सेनादि के मुख्य अधिकारियों को गुप्त रूप से यथा-योग्य रत्न = उत्तमोत्तम वस्तुएं देते हो ?

कच्चिदात्मानमेवाऽग्रे विजित्य विजितेन्द्रियः।
परान् जिगीषसे पार्थ प्रमत्तानजितेन्द्रियान् ॥६१॥

क्या सब से पूर्व अपने आपको जीतकर विशेष रूप से जितेन्द्रिय होकर, हे पार्थ ! प्रमादी, अजितेन्द्रियों = व्यसनियों को जीतने की इच्छा किया करता है ?

[अथर्ववेद में राजा के लिए ब्रह्मचर्य्य का आदेश है—'ब्रह्मचर्य्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति (११।५।१७) = ब्रह्मचर्य्यरूपी तप से राजा राष्ट्र की विशेष रूप में रक्षा कर सका करता है।' ब्रह्मचर्य्य सभी आश्रमों, सभी वर्णों के लिए अनिवार्य्य रूपेण अवश्य पालनीय कर्त्तव्य है।]

कच्चित्ते यास्यतः शत्रून्पूर्वं यान्ति स्वनुष्ठिताः।
साम दानं च भेदश्च दण्डश्च विधिवद् गुणाः ॥६२॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रुओं पर चढ़ाई करने के पूर्व क्या तेरे उतम रीति से अथवा उतम मनुष्यों के द्वारा अनुष्ठान किये हुए साम, दान, दण्ड, तथा भेद गुण विधिपूर्वक पहुँचते हैं न ?

[सामादि गुणों के प्रयोग में वहुत सावधानता वर्तनी चाहिए। तनिक सी भूल से ये अनर्थकारक हो सकते हैं।]

कच्चिन्मूलं दृढं कृत्वा परान्यासि विशांपते ।
तांश्च विक्रमसे जेतुं जित्वा च परिरक्षसि ॥६३॥

हे राजन् ! तू अपने मूल—स्वराज्य को दृढ करके ही शत्रुओं पर चढ़ाई करता है ? और उन्हें जीतने के लिए विक्रम करता है ? तथा जीतकर उनकी पूर्णतया रक्षा करता है न ?

[परराज्यापहरण आर्य्यों का लक्ष्य नहीं होता था। शत्रु विजय का उद्देश्य यश अथवा वहां की प्रजा की पीड़ा का निवारण होता था। 'यशसे विजिगीषूणाम्' ।]

कच्चिदष्टांगसंयुक्ता चतुर्विधबला चमूः ।
बलमुख्यैः सुनीता ते द्विषतां प्रतिवाधिनी ॥६४॥

क्या तेरी अष्टांगसंयुक्त, चार प्रकार के वल वाली सेना, सेना के मुखियों से सुशिक्षित हुई हुई शत्रु ओं को काटने में समर्थ है न ?

[अष्टांग = 'रथा नागा हया योधाः पत्तयः कर्म्मकारकाः। चारा दैशिकमुख्याश्च ध्वजिन्यष्टाङ्गिका मता ॥' अर्थात् रथ, हाथी, घोड़े, योधा, पैदल, सेवक, गुप्तचर तथा प्रधान शिक्षक ये सेना के आठ अंग हैं। हमारे विचार में ये ठीक नहीं हैं। सेना के आठ अङ्ग ये हो सकते हैं—(१) राष्ट्र की बलवती भावना (२) जन वल (२) आयु-धवल (४) अन्न (खानपान-पहिरान) (५) योग्य सेनासंचालक वर्ग (६) अनुशासन, (७) गुप्तचर (८) योग्य उपदेशक।

चार प्रकार की सेना (१ मूल = निजी सेना (२) मित्रराष्ट्रों की सेना (३) सामयिक आवश्यकतानुसार भर्त्ती की गई सेना, एवं (४) वन में कार्य्यकुशल सेना, अथवा भूमि, समुद्र, व्योम एवं वन (पर्वत

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि बीहड़ शीतप्रधान प्रदेशों) में कार्य्यकुशल सेना ।]

कच्चिल्लवं च मुष्टिं च परराष्ट्रे परंतप ।

अविहाय महाराज निहंसि समरे रिपून् ॥६५॥

हे महाराज ! हे परन्तप । क्या शत्रु के राष्ट्र में लव तथा मुष्टि को छोड़े बिना युद्ध में शत्रुओं का तू घात करता है ?

[लव-खेत काटने, तथा मुष्टि—खेतों की रक्षा को कहते हैं । अर्थात् शत्रु के राज्य के खेतों को काटकर उसे अपनी सेना के लिए सुरक्षित करके वहां दुर्भिक्ष उत्पन्न करके भूखी प्रजा को सुगमता से अधीन किया जा सकता है ।]

कच्चित्स्वपरराष्ट्रेषु बहवोऽधिकृतास्तव ।

अर्थान्समधितिष्ठन्ति रक्षन्ति च परस्परम् ॥६६॥

क्या अपने राष्ट्र के समान दूसरे राष्ट्रों में तेरे बहुत से अधिकारी कार्य्यों पर भली प्रकार अधिष्ठित हैं ? और एक दूसरे की रक्षा भी करते हैं न ?

कच्चिदभ्यवहार्याणि गात्रसंस्पर्शनानि च ।

ध्रेयाणि च महाराज रक्षन्त्यनुमतास्तव ॥६७॥

क्या तेरे विश्वासपात्र जन तेरे खाने योग्य पदार्थों, शरीर को स्पर्श करने वाले वस्त्रादिकों तथा सुगन्धित पदार्थों, को तेरे लिए बचा रखते हैं न ? अर्थात् स्वयं तो हड़प नहीं कर जाते ?

['गात्रसंस्पर्शनानि' के स्थान में 'गात्रसंघर्षणानि' पाठ है । 'शरीर में रगड़े जाने योग्य पदार्थ' उसका अर्थ है ।]

कच्चित्कोशश्च कोष्ठश्च वाहनं द्वारमायुधम् ।

आयश्च कृतकल्याणैस्तव भक्तैरनुष्ठितः ॥६८॥

क्या तेरे कल्याण-भाजन भक्त, कोश = कोशागार, कोष्ठ = अन्न भण्डार, वाहन = वाहनशाला तथा द्वार = आतों जातों का विचार तथा आय = आय के साधनों का अनुष्ठान-जांच पड़ताल करते रहते हैं ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चिदाभ्यन्तरेभ्यश्च बाह्येभ्यश्च विशांपते ।
रक्षस्यात्मानमेवाऽग्रे तांश्च स्वेभ्यो मिथश्च तान् ॥६८॥

हे राजन् ! क्या तू आभ्यन्तरों तथा बाह्यों से सब से पूर्व अपनी रक्षा करता है ? और अपनों से उन (आभ्यन्तरों तथा बाह्यों) की, और उनकी एक दूसरे से रक्षा करता है ?

[राज्याधिकारी को आभ्यन्तरों=पाचकादि सेवकों, पुत्र कलत्रादिकों से तथा बाह्यों=सेनापति आदिकों से अपना बचाव करने में सदा सावधान रहना चाहिए। उन आभ्यन्तरों तथा बाह्यों की अपने पुत्र अमात्यादि से, इसी प्रकार पुत्रों की पुत्रों एवं अमात्यों से अमात्यों की, पुत्रों एवं अमात्यों से रक्षा की व्यवस्था रखनी चाहिए।]

कच्चिन्न पाने द्यूते वा क्रीडासु प्रमदासु च ।
प्रतिजानन्ति पूर्वाह्णे व्ययं व्यसनजं तव ॥६९॥

क्या तेरे परिचारक तेरे पहले पहर के मद्यादि—पान, जुआ, क्रीड़ा, स्त्री प्रसंग संबन्धी व्यसनों से उत्पन्न होने वाले ह्रास को तो नहीं जानते ?

[अर्थात् तू इन व्यसनों से मुक्त है। प्रजा व्यसनग्रस्त राजा की विरोधिनी हो जाती है।]

कच्चिदायस्य चार्धेन चतुर्भागेन वा पुनः ।
पादभागैस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुध्यते तव ॥७०॥

क्या तेरे आय के आधे, अथवा चौथाई अथवा तीन चौथाई भाग से तेरे राष्ट्र का व्यय पूरा हो जाता है ?

[कभी सुभिक्ष होता है, कभी दुर्भिक्ष=अकाल पड़ जाता है, और कभी सामान्य स्थिति रहती है। दुर्भिक्ष दशा में आय की अपेक्षा अधिक व्यय की संभावना होती है। सुभिक्ष में आय अधिक होने से व्यय तदपेक्षया कम हो सकता है। तात्पर्य्य यह कि आय की अपेक्षा व्यय न्यून होना चाहिए।]

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चिज्ज्ञातीन्गुरून्वृद्धान्वणिजः शिल्पिनः श्रितान् ।
अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान् ॥७१॥

तू अपने संबन्धियों, गुरुओं के वृद्ध होने पर, तेरे आश्रित व्यापारियों तथा शिल्पियों को दरिद्र होने पर धन-धान्य के द्वारा बार-बार कृपा करता है न ?

कच्चिच्चाऽऽयव्यये युक्ताः सर्वे गणकलेखकाः ।
अनुतिष्ठन्ति पूर्वाह्णे नित्यमायव्ययं तथा ॥७२॥

तेरे आय व्यय (के लेखा रखने) में नियुक्त सभी गणक (Accountant) तथा लेखक (क्लर्क) पहले पहर में प्रतिदिन आय तथा व्यय की सूचना देते हैं।

कच्चिदर्थेषु संप्रौढान्हितकामाननुप्रियान् ।
नाऽपकर्षसि कर्मभ्यः पूर्वमप्राप्य किल्बिषम् ॥७३॥

तू अर्थों (प्रयोजनसिद्धि) में प्रौढ़, हितैषी और अतएव तदनुकूल प्रियजनों को, पहले से दोष प्राप्त किए (देखे) विना कार्य्यों से च्युत तो नहीं कर देता है न ?

कच्चिद्विदित्वा पुरुषानुत्तमाधममध्यमान् ।
त्वं कर्म स्वनुरूपेषु नियोजयसि भारत ॥७४॥

हे भारत ! तू पुरुषों को उत्तम, अधम तथा मध्यम समझकर तदनुरूप कार्य्यों पर उनको नियुक्त करता है न ?

[यही बात ४३ वें श्लोक में कही गई हैं]

कच्चिन्न लुब्धाश्चौरा वा वैरिणो वा विशांपते ।
अप्राप्तव्यवहारा वा तव कर्मस्वनुष्ठिताः ॥७५॥

हे राजन् ! कहीं लोभी, चोर अथवा वैरी या व्यवहारज्ञान-शून्य वा जिनका व्यवहार आचार पूर्व से अज्ञात है, ऐसे अधिकारी तो कार्य्यों पर नियुक्त नहीं हैं न ?

कच्चिन्न चौरैर्लुब्धैर्वा कुमारैः स्त्रीबलेन वा ।
त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं कच्चित्तुष्टाः कृषीवलाः ॥७६॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं चोर, लालची, राजकुमार, अथवा स्त्री शक्ति अथवा तुम स्वयं ही राष्ट्र को पीड़ित तो नहीं करते हो ? क्या किसान तेरे राज्य में सन्तुष्ट हैं ?

कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहन्ति च ।
भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥७७॥

क्या तेरे राष्ट्र में बड़े बड़े और जल से पूर्ण तालाब योग्य स्थानों पर विशेषरूप से बने हुए हैं ? खेती देवमातृक (वर्षा मात्र के आधार से होने वाली) तो नहीं है ?

[तत्पर्य यह है कि नहरों, तालाबों आदि का सुप्रबन्ध राजा को अवश्य करना चाहिए।]

कच्चिन्न भक्तं बाजं च कर्षकस्याऽवसीदति ।
प्रत्येकं च शतं वृद्ध्या ददास्यृणमनुग्रहम् ॥७८॥

कहीं किसान का अन्न बीज नष्ट तो नहीं हो जाता, एक प्रतिशत मासिक वृद्धि =ब्याज-सूद पर कृपायुक्त ऋण देता है न ?

[यदि अतिवृष्टि, अनावृष्टि या अन्य किसी आपत्ति के कारण किसान की खेती नष्ट हो जाये भ्रष्ट हो जाए, तो राजा का कर्त्तव्य है कि वह किसान की सहायता करे। यदि कृषक ऋण मांगे, तो उससे एक प्रतिशत सूद ले।

कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥७९॥

हे तात=प्रिय ! क्या तेरे राष्ट्र में सज्जन मनुष्य वार्ता का अनुष्ठान भली प्रकार करते हैं ? क्योंकि हे तात ! वार्ता पर आश्रित यह संसार सुखसंपन्न रहता है।

[विद्या के चार विभाग किये जाते हैं। त्रयी, वार्ता, दण्डनीति तथा आन्वीक्षिकी। वैदिक साहित्य त्रयी के अन्तर्गत है। राजनीति का दूसरा नाम दण्डनीति है। तर्कशास्त्र, एवं दर्शनशास्त्र तथा परीक्षणात्मक [प्रयोगात्मक] ज्ञान-विज्ञान आन्वीक्षिकी है। कृषि, व्यापार, पशुपालन तथा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूद=लेन देन वार्ता कहलाते हैं। संसार यात्रा में इनकी प्रधानता है।]

कच्चिच्छूराः कृतप्रज्ञाः पञ्च पञ्चस्वनुष्ठिताः।
क्षेमं कुर्वन्ति संहत्य राजञ् जनपदे तव ॥८०॥

है राजन्! क्या तेरे जनपद में पांच-पांच शूर, बुद्धिसंपन्न और सुनिपुण अधिकारी मिलकर प्रजा का कल्याण करते हैं न?

[राज्य को सुव्यवस्थित चलाने के लिये प्रति ग्राम में यह पांच अधिकारी राजा की ओर से होने चाहिये। १ प्रशास्ता, २ समाहर्ता, ३ संविधाता, ४ लेखक तथा ५ साक्षी। प्रशास्ता=प्रबन्ध शासक, (पुलिस अधिकारी) २ समाहर्ता=प्रजा से राजा का भाग संग्रह करने वाला ३ संविधान=प्रजा तथा समाहर्ता में मेल मिलाप रखने वाला, (Laision-officer,), सम्पर्क अधिकारी, ४ लेखक—आय व्यय तथा विवादास्पद घटनाओं को लेखबद्ध करने वाला, ५ साक्षी सरकारी गवाह]

कच्चिन्नगरगुप्त्यर्थं ग्रामा नगरवत्कृताः।
ग्रामवच्च कृताः प्रान्तास्ते च सर्वे त्वदर्पणाः ॥८१॥

राष्ट्र की सुरक्षा के लिये ग्रामों को नगरवत् कर रक्खा है न? और ग्रामों की भांति सीमा प्रदेशों को, तथा वे सब तेरे अर्पण हुए हुये हैं न?

[नगर में स्वभावतः अनेक शूरवीरों का निवास रहा ही करता है। देश की सुरक्षा के लिये ग्रामों में भी राज्य की ओर से शूद्रों व शूरों के निवास की व्यवस्था होनी चाहिए। किसी समय नगर आदि की परिभाषाऐं इस भांति थी—जिनमें बहुत अधिक संख्या में शूरवीर वसते हों, वे नगर, जिनमें बाजार हों अथवा लगते हों वे नगर, और जिनमें शूद्र कर्मकर लोग अधिक रहते हों वे ग्राम हैं। इन सब का समाचार राजा को नियमेन मिलना चाहिए।]

कच्चिद् बलेनाऽनुगताः समानि विषमाणि च।
पुराणि चौरान् निघ्नन्तश्चरन्ति विषये तव ॥८२॥

तेरे देश में सम-सम्पन्न दशा वाले, विषम=दुर्भिक्षादि से पीड़ित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा वाले चोरों के विनाशक नागरिक तेरी सेना से अनुगत हो कर विचरते हैं न ?

[चोरों का पीछा राज्यपुरुषों को करना चाहिए, तभी राष्ट्र निरुपद्रव रह सकता है।]

कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसि कच्चित्ताश्च सुरक्षिताः ।
कच्चिन्न श्रद्दधास्यासां कच्चिद्गुह्यं न भाषसे ॥८३॥

स्त्रियों की सांत्वना करता है न ? उनको सुरक्षित रखता है न ? उन पर अधिक विश्वास तो नहीं करता है न ? और उनके आगे गुप्त बातें तो नहीं कहता ?

कच्चिदात्ययिकं श्रुत्वा तदर्थमनुचिन्त्य च ।
प्रियाण्यनुभवञ्शेषे न त्वमन्तःपुरे नृप ॥८४॥

क्या तू अनर्थकारी बातें सुनकर और उसका अर्थ विचार कर आनन्द मनाता हुआ अन्तःपुर में तो नहीं सो जाता ?

कच्चिद् द्वौ द्रथमौ यामौ रात्रेः सुप्त्वा विशांपते ।
संचिन्तयसि धर्मार्थौ यान उत्थाय पश्चिमे ॥८५॥

हे राजन् ! क्या तू रात्रि के पहले दो पहर (दूसरा तीसरा) सोकर पिछले पहर में उठकर धर्म्म तथा अर्थ का विचार करता है न ?

[मनु जी ने समस्त गृहस्थों के लिए ऐसा विधान किया है—'ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । (४।९२) ब्राह्ममुहूर्त्त में मनुष्य जागे और धर्म्म तथा अर्थ का अनुचिन्तन करे।

कच्चिदर्थयसे नित्यं मनुष्यान्समलंकृतः ।
उत्थाय काले कालज्ञैः सह पाण्डव मन्त्रिभिः ॥८६॥

हे पाण्डव ! तू काल को पहचानने वाले मन्त्रियों के साथ समय पर उठकर, सुभूषित होकर मनुष्यों को नित्य चाहता है, अर्थात् उनके दुःख सुख को जानना चाहता है ?

कच्चिद्रक्ताम्बरधराः खड्गहस्ताः स्वलंकृताः ।
उपासते त्वामभितो रक्षणार्थमरिन्दम ॥८७॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अरिन्दम-शत्रुदमन ! क्या रक्तवस्त्रधारी कृपाणपाणि, उत्तमता से विभूषित रक्षक तेरी रक्षा के लिए चारों ओर से तेरी सेवा में उपस्थित रहते हैं न ?

कच्चिद्दण्ड्येषु यमवत्पूज्येषु च विशांपते ।
परीक्ष्य वर्तसे सम्यगप्रियेषु प्रियेषु च ॥८८॥

क्या तू दण्डयोग्य अपराधियों पर यम-मृत्यु के समान (कठोर) तथा पूज्यों के प्रति, हे राजन् । यम=विनीत के समान तथा प्रियों एवं अप्रियों के प्रति परीक्षा करके ठीक-ठीक व्यवहार करता है न ?

कच्चिच्छारीरमाबाधमौषधैर्नियमेन वा ।
मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थाऽपकर्षसि ॥८९॥

क्या, हे पार्थ ! तू शारीरिक कष्ट को औषधों अथवा नियम से, तथा मानसिक कष्ट को वृद्धों की सेवा आदि के द्वारा सदा दूर करता रहता है न ?

कच्चिद्वैद्याश्चिकित्सायामष्टाङ्गायां विशारदाः ।
सुहृदश्चाऽनुरक्ताश्च शरीरे ते हिताः सदा ॥९०॥

क्या अष्टांग चिकित्सा में कुशल वैद्य तेरे मित्र एवं प्रेमी होकर सदा तेरे शरीर का हित करते हैं न ?

[आयुर्वेद को अष्टांग चिकित्सा कहा जाता है । वे आठ अंग ये हैं—'निदानं पूर्वलिंगानि रूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिरोषधी रोगी परिचारक एव च" १ निदान=रोग का हेतु, (२) पूर्वलिङ्ग—पूर्वचिन्ह (३) पूर्वरूप=रोग के पूर्व लक्षण (४) उपशय=रोग के स्पष्ट लक्षण (५) रोग की संप्राप्ति (६) ओषधि=रोग के अनुरूप औषध (७) रोगी=वह बालक है, युवा है, वृद्ध है, स्त्री है, कुमारी है, विवाहित है, गर्भिणी है इत्यादि तथा किस देश का जन्मा है इत्यादि (८) परिचारक =रोगी की सेवा करने वाला । अथवा आठ अङ्ग ये हैं—(१) रोग, (२) रोग का हेतु, (३) रोग का लक्षण (४) रोग-हेतु का लक्षण (५) आरोग्य (६) आरोग्य लक्षण (७) आरोग्यहेतु तथा (८) आरोग्य लक्षण ।]

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चिन्न लोभान्मोहाद्वा मानाद्वापि विशांपते ।
अर्थिप्रत्यर्थिनः प्राप्तान्न पश्यसि कथंचन ॥९१॥

क्या तू उपस्थित हुए अर्थि-प्रत्यर्थियों (वादि प्रतिवादियों) को, तो हे राजन् ! किसी प्रकार लोभ से, वा मोह से अथवा मान से तो नहीं देखता है न ?

[वादि प्रतिवादियों को धन लोभ से भी देखा जा सकका है, अर्थात् उन पर अन्याय से अनुचित दण्ड लगा दिया जा सकता है। अपने प्रेम भाजन हों, तो उनको मोह से देखा जा सकता है। मोहवश उनको दंडमुक्त कर दिया जा सकता है, उससे न्यायनिष्ठा को धक्का लगता है। मान्य आचार्य्य, पिता, चचा, मामा, आदि वन्धुओं को कचहरी में आने पर मानवश आदर से व्यवहार करने पर न्याय पर कुठाराघात की पूरी संभावना रहती है।]

कच्चिन्न लोभान्मोहाद्वा विश्रम्भात्प्रणयेन वा ।
आश्रितानां मनुष्याणां वृत्तिं त्वं संरुणत्सि वै ॥९२॥

क्या तू कहीं लोभ से वा मोह से, विश्वास से अथवा प्रीति से आश्रित मनुष्यों की वृत्ति को तो नहीं रोकता है न ?

कच्चित्पौरा न सहिता ये च ते राष्ट्रवासिनः ।
त्वया सह विरुध्यन्ते परैः क्रीताः कथंचन ॥९३॥

क्या कहीं जो तेरे राष्ट्र में बसने वाले हैं वे नागरिक शत्रुओं से किसी प्रकार खरीदे जाकर इकट्ठे मिलकर तेरा विरोध तो नहीं करते हैं न ?

कच्चिन्न दुर्बलः शत्रुर्बलेन परिपीडितः ।
मन्त्रेण बलवान्कश्चिदुभाभ्यां च कथंचन ॥९४॥

कहीं तेरी शक्ति से परिपीड़ित कोई दुर्बल शत्रु मन्त्र=मन्त्रणा अथवा मन्त्र तथा बल दोनों के द्वारा बलवान् तो नहीं हो गया ?

कच्चित्सर्वे ऽनुरक्तास्त्वां भूमिपालाः प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्त्वदर्थेषु संत्यजन्ति त्वयाहृताः ॥९५॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं प्रधानतः दान मान से वशीकृत सभी राजा तेरे अनुरागी होकर तेरे कार्यों में अपने प्राणों को त्यागते हैं न ?

[इस भाव का श्लोक पूर्व भी आ चुका है, किन्तु वेतन भोगी योधा, मन्त्री आदि के संबन्ध में है, यह अधीनस्थ राजाओं के संबन्ध में है। कहीं कहीं 'हृता' के स्थान में 'ऽऽदृता' पाठ है। उसका अर्थ है सत्कृत।]

कच्चित्ते सर्वविद्यासु गुणतोऽर्चा प्रवर्तते ।
ब्राह्मणानां च साधूनां तव नैःश्रेयसी शुभा ।
दक्षिणास्त्वं ददास्येषां नित्यं स्वर्गापवर्गदाः ॥९६॥

क्या सब विद्याओं के विषय में ब्राह्मणों तथा साधुओं के लिए गुणानुसारिणी तेरी पूजा प्रवृत्त होती है ? क्या तू इनको स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करने वाली परम कल्याणकारिणी दक्षिणाऐं देता है न ?

[यदि 'नैःश्रेयसी शुभा' पाठ हो, तो ये अर्च्चा के विशेषण हो जाएंगे।]

कच्चिद्धर्मे त्रयीमूले पूर्वैराचरिते जनैः ।
यतमानस्तथा कर्तुं तस्मिन्कर्मणि वर्तसे ॥९७॥

क्या वेदमूलक तथा पूर्वजनों से आचरित धर्म में तू यत्नशील होकर उस कर्म में वैसा करने का व्यवहार भी करता है न ?

कच्चित्तव गृहेऽन्नानि स्वादून्यश्नन्ति वै द्विजाः ।
गुणवन्ति गुणापेतास्तवाऽध्यक्षं सदक्षिणम् ॥९८॥

क्या तेरे घर में गुणी ब्राह्मण गुणयुक्त स्वादु अन्नों को तेरे समक्ष खाते हैं और दक्षिणा पाते हैं न ?

कच्चित्क्रतूनेकचित्तो वाजपेयांश्च सर्वशः ।
पुण्डरीकांश्च कात्स्न्र्येन यतसे कर्तुमात्मवान् ॥९९॥

क्या एकाग्रचित्त और आत्मन्वी होकर सर्व प्रकार यज्ञों-वाजपेयों तथा पुण्डरीकों—को पूर्णतया करने का यत्न करता है न ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चिज्ज्ञातीन्गुरून्वृद्धान्दैवतांस्तापसानपि ।

चैत्यांश्च वृक्षान्कल्याणान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि ।।१००।।

क्या तू वृद्ध संबन्धियों, गुरुओं, निस्वार्थ विद्वानों, तपस्वियों, चैत्यों=मन्दिरों, कल्याणकारी वृक्षों तथा ब्राह्मणों को नमता=पूजता है न ?

[किसी वस्तु को उपयोगी, हितकारी जानकर उसकी प्रतिष्ठा, रक्षा करना उसकी पूजा वा नमस्कार है । चैत्य का एक अर्थ होता है ग्रामसूचक वृक्ष ।]

कच्चिच्छोको न मन्युर्वा त्वया प्रोत्पाद्यतेऽनघ ।

अपि मङ्गलहस्तश्च जनः पार्श्वेऽनुतिष्ठति ।।१०१।।

हे अनघ=पाप रहित ! कहीं तू शोक अथवा क्रोध तो उत्पन्न नहीं कर देता है ? (अर्थात् ऐसा कर्म तो नहीं कर बैठता जिससे जनता में शोक अथवा क्षोभ उत्पन्न हो जाए) और मंगलहस्त (हाथ में पवित्र वस्तुएं लिए हुआ) जन=पुरोहित तेरे पहलू में स्वस्त्ययन करता है न ?

कच्चिदेषा ते बुद्धिर्वृत्तिरेषा च तेऽनघ ।

आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थदर्शिनी ।।१०२।।

एतया वर्तमानस्य बुद्ध्या राष्ट्रं न सीदति ।

विजित्य च महीं राजा सोऽत्यन्तं सुखमेधते ।।१०३।।

क्या तेरी ऐसी (वर्तमान समय की) आयुष्या=आयु बढ़ाने वाली तथा यशस्या=यश देने वाली और धर्म्म-अर्थ और काम की सिद्धि दिखाने वाली बुद्धि तथा वृत्ति है न ? इस बुद्धि से व्यवहार करने वाले राजा का राष्ट्र=राज्य नष्ट नहीं होता है, वह राजा पृथिवी को जीत कर अत्यन्त सुख से बढ़ता है ।

कच्चिदार्यो विशुद्धात्मा क्षारितश्चौरकर्मणि ।

अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्ध्यते शुचिः ।।१०४।।

कहीं कोई पवित्रात्मा आर्य्य शास्त्र रहस्य के न जानने वाले राज-कर्म्मचारियों द्वारा चौर (निन्दायुक्त) कर्म्म में फंसा कर, निर्दोष ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभ के कारण तो नहीं मार दिया जाता ?

[कहीं कहीं 'अदृष्टशास्त्रकुशलैः' के स्थान में 'अदृष्टः शास्त्रकुशलैः' पाठ है। उसका अर्थ होगा—व्तवस्थाशास्त्र में कुशल अमात्यों से अज्ञात' अर्थात् अनजान में।

दुष्टो गृहीतस्तत्कारी तज्ज्ञैर्दृष्टः सकारणः।
कच्चिन्न मुच्यते स्तेनो द्रव्यलोभान्नरर्षभ ॥१०५॥

स्वभाव से दुष्ट, दुष्ट कर्म्म करने वाले, चोरी के खोज करने वालों के द्वारा चोरी के द्रव्यसहित पकड़ा गया चोर, हे नरश्रेष्ठ ! कहीं द्रव्य लोभ के निमित्त छोड़ तो नहीं दिया जाता ॥

उत्पन्नान्कच्चिदाढ्यस्य दरिद्रस्य च भारत।
अर्थान्न मिथ्या पश्यन्ति तवाऽमात्या हृताधनैः ॥१०६॥

कहीं तेरे मन्त्री लोगों के बहकाने से, हे भारत ! धनी अथवा दरिद्र के शीघ्र उत्पन्न धनों को मिथ्या (अन्याय से अर्जित) तो नहीं समझते हैं ?

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥१०७॥
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्याऽपरिरक्षणम् ॥१०८॥
मङ्गल्याद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान्राजदोषांश्चतुर्दश।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूलापि पार्थिवाः ॥१०९॥

हे राजन् ! जिन दोषों के कारण वद्धमूल राजा भी नष्ट हो जाते हैं, उन चौदह राज दोषों को तो त्याग देता है न ?

वे दोष ये हैं—नास्तिकता, झूँठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का संग न करना, आलस्य, पञ्चवृत्तिता=भिन्नवृत्तिता=सदाचार साहित्य अथवा खुला स्वभाव, केवल अर्थों=धनों का ही विचार करना, अर्थज्ञान शून्य के साथ विचार करना, निश्चित किये कार्यों का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न करना, गुप्त मन्त्रणा की रक्षा न करना, मंगलादि=शुभ कार्य्यों का न करना, और सब ओर से प्रत्युत्थान (राज्यकार्य की उपेक्षा)।

कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलं धनम् ।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम् ॥११०॥

तेरे वेद तो सफल हैं न ? (वेदों का पढ़ना सुनना सफल हैं न); तेरा धन तो सफल हैं ? (पात्रों को दानद्वारा) ? तेरी पत्नी भी सफल है (ससन्तान है) तेरा ज्ञान तो सफल है (ज्ञान के अनुसार अनुष्ठान होता है ?)

कथं वै सफला वेदाः कथं वै सफलं धनम् ।
कथं वै सफला दाराः कथं वै सफलं श्रुतम् ॥१११॥

युधिष्ठिर ने पूछा—वेद कैसे सफल होते हैं ? धन कैसे सफल होता है ? पत्नी कैने सफल होती है ? और अध्ययन=ज्ञान कैसे सफल होता है ?

अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम् ।
रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥११२॥

नारद ने उतर दिया—वेदों का फल अग्निहोत्र है, धन का फल दान तथा उपयोग है, स्त्री का फल प्रीति तथा सन्तान है, अध्ययन=ज्ञान का फल शील एवं आचार है।

[अग्निहोत्र का साधारण फल वायुजल आदि का निर्मल-करण है, उससे संसार के स्वास्थ्य के सुधार प्रचार में सहायता मिलती है। यहां अग्निहोत्र शब्द लोकोपकार संबन्धी आत्मकल्याण-विषयक सभी भले कर्म्मों का उपलक्षण है।]

एतदाख्याय स मुनिर्नारदो वै महातपाः ।
पप्रच्छाऽनन्तरमिदं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥११३॥

वैशम्पायन ने कहा—इतना कह कर महातपस्वी नारदमुनि ने इसके पश्चात् धर्म्मात्मा युधिष्ठिर से यह पूछा।

[हमारे विचार में १११, ११२, तथा ११३, ये तीनों श्लोक प्रक्षि-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्त हैं : नारद का उपदेश प्रश्नात्मक है। यही इसकी विशिष्टता है। और तो कहीं युधिष्ठिर से प्रश्न नहीं कराया गया, पुनः यहाँ क्यों प्रश्न कराया जाए। युधिष्ठिर का प्रश्न तथा नारदकृत उत्तर तथा कथा जोड़ने के लिए वैशम्पायन के वचन सभी अप्रासंगिक हैं।]

कच्चिदभ्यागता दूराद्वणिजो लाभकारणात्।
यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः ॥११४॥

नारद ने पूछा—क्या दूर देश से लाभ उठाने के लिए आये हुए व्यापारियों से शुल्कोपजीवियों (चूँगी आदि पर निर्वाह करने वालों) को यथायोग्य शुल्क दिलाया जाता है।

[ऐसा इससे प्रतीत होता है कि उस काल में चुँगी आदि ठेका पर उठाये जाते थे, जैसा कि आज कल भी अनेक स्थानों पर है।]

कच्चित्ते पुरुषा राजन्पुरे राष्ट्रे च मानिताः।
उपानयन्ति पण्यानि उपधाभिरवञ्चिताः ॥११५॥

क्या, हे राजन्! तेरे नगर वा राष्ट्र में उन लोगों का मान होता है न; जो निश्कुल होकर पुण्य=क्रयविक्रय योग्य पदर्थों को लाते हैं।

[उपधाभिः अवञ्चिताः=जिनको छल के द्वारा नहीं ठगा जा सकता।]

कच्चिच्छृणोषि वृद्धानां धर्मार्थसहिता गिरः।
नित्यमर्थविदां तात यथा धर्मार्थदर्शिनाम् ॥११६॥

हे तात! क्या तुम वृद्धों की धर्म्म-अर्थयुक्त बातों को सुनते हो न? और धर्म्म और अर्थ के यथार्थ वेत्ता अर्थज्ञों की बात भी सुनते हो न?

कच्चित्ते कृशितन्त्रेषु गोषु पुष्पफलेषु च।
धर्मार्थं च द्विजातिभ्यो दीयेते मधुसर्पिषी ॥११७॥

क्या कृषि-अधीन=कृषि से उत्पन्न होने वाले पुष्पफल तथा गौओं से उत्पन्न होने वाले पुष्पफल (दूध घी) अर्थात् अन्न और घृत ब्राह्मणों को धर्म्मार्थ=मूल्य के बिना दिये जाते हैं?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मधुसर्पिषी में आये मधु शब्द का अर्थ यहां अन्न है। 'अन्नं वै मधु'=अन्न ही मधु है। यह वाक्य अनेक वार ब्राह्मण ग्रन्थों में आया है।]

द्रव्योपकरणं कच्चित्सर्वदा सर्वशिल्पिनाम्।
चातुर्मास्यावरं सम्यङ्नियतं संप्रयच्छसि ॥११८॥

क्या सभी शिल्पियों को सर्वदा द्रव्य=वेतन, जो कुछ भी भली प्रकार नियत हो चुका है, तथा उपकरण=पदार्थ निर्माण सामग्री कम से कम चार मास के लिए पर्य्याप्त देते हो न?

कच्चित्कृतं विजानीषे कर्तारं च प्रशंससि।
सतां मध्ये महाराज सत्करोषि च पूजयन् ॥११९॥

महाराज! क्या किसी के किए [उपकार] को जानते=मानते हो, अर्थात् कृतज्ञ तो हो न? और (उपकार) करने वाले की प्रशन्सा करते हो न? और सज्जनों के बीच में आदर करते हुए उसका सत्कार करते हो न?

कच्चित्सूत्राणि सर्वाणि गृह्णासि भरतर्षभ।
हस्तिसूत्राश्वसूत्राणि रथसूत्राणि वा विभो ॥१२०॥

क्या, हे भरतर्षभ! हस्तिसूत्र, तथा अश्वसूत्र तथा रथसूत्र आदि सब सूत्रों को, हे महाराज! समझते हो, सीखे हो?

[सूत्र संक्षिप्तव्यवस्था को कहते हैं। राजा को सूत्ररूप में सभी कुछ जानना चाहिए। हस्तिसूत्र आदि में हस्तिआदिकों के लक्षण, परीक्षा, चिकित्सा, औषध, उद्दीपन, मादन आदि का प्रतिपादन होता है।]

कच्चिदभ्यस्यते सम्यग्गृहे ते भरतर्षभ।
धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रं च नागरम् ॥१२१॥

हे भरतश्रेष्ठ! क्या तेरे घर में धनुर्वेद के सूत्र तथा नगरहितकारी यन्त्रसूत्र का अभ्यास किया जाता है?

[आग्नेय पदार्थों के वल से सीसा, लोहा, कांसा आदि धातुओं तथा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर के गोलों को फेंकने वाले लोहे की बनी मशीनों को यन्त्र कहते हैं।]

कच्चिदस्त्राणि सर्वाणि ब्रह्मदण्डश्च तेऽनघ ।
विषयोगास्तथा सर्वे विदिताः शत्रुनाशनाः ॥१२२॥

हे अनघ ! क्या सब अस्त्र तथा ब्रह्मदण्ड और शत्रुनाशक सभी विषयोग तुझे विदित हैं न ?

कच्चिदग्निभयाच्चैव सर्वं व्यालभयात्तथा ।
रोगरक्षोभयाच्चैव राष्ट्रं स्वं परिरक्षसि ॥१२३॥

क्या तू अपने सारे राष्ट्र की अग्निभय से, हिंसक जन्तुओं के भय से, तथा रोग भय एवं रोग जन्तु भय से पूर्णतया रक्षा करता है न ?

कच्चिदन्धांश्च मूकांश्च पंगून्व्यङ्गानबान्धवान् ।
पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानपि ॥१२४॥

हे धर्म्मज्ञ ! क्या तू अन्धों, गूंगों, पंगुओं (लूलों, लंगड़ों), अंगहीनों, बन्धुहीनों तथा संन्यासियों की, मित्र की भांति पालना करता है न ?

[प्रव्रजिताशब्द का एक अर्थ समाज वहिष्कृत भी होता है। अन्नादि का तो वह भी अधिकारी है। नारद के इस उपदेश में मनुष्य का महत्त्व अन्तर्निहित है। मनुष्य चाहे कैसा ही पतित हो, उसके फिर उठने की संभावना सदा बनी रहती है, अतः उसे जीवन-साधन मिलना ही चाहिए। आर्य्य आचार्य्य कह गए हैं—जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति = जीता मनुष्य शतशः कल्याणों का अनुभव कर सकता है। आर्य्यों ने मनुष्य का महत्त्व भुलाकर अपना समाज खण्डवण्ड करके अनेक दुःख भोगे हैं।]

षडनर्था महाराज कच्चित्ते पृष्ठतः कृताः ।
निद्राऽऽलस्यं भयं क्रोधो मार्दवं दीर्घसूत्रता ॥१२५॥

हे महाराज ! क्या तू ने निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, मृदुता (केवल मृदुता) तथा दीर्घसूत्रिता। इन छह दोषों की ओर पीठ कर रखी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है न ?

ततः कुरूणामृषभो महात्मा,
श्रुत्वा गिरो ब्राह्मणसत्तमस्य ।
प्रणम्य पादावभिवाद्य तुष्टो,
राजाऽब्रवीन्नारदं देवरूपम् ॥१२६॥

इसके पश्चात् कुरुश्रेष्ठ महात्मा राजा [युधिष्ठिर] ने उस ब्राह्मण-श्रेष्ठ की बातें सुनकर प्रणाम करके (हाथ जोड़कर) और पैरों में अभिवादन करके प्रसन्न होकर देवरूप नारद को कहा ।

[इस श्लोक से पूर्व 'वैशम्पायन उवाच' शब्द चाहिएं]

एवं करिष्यामि यथा त्वयोक्तं,
प्रज्ञा हि मे भूय एवाऽभिवृद्धा ।
उक्त्वा तथा चैव चकार राजा
लेभे महीं सागरमेखलां च ॥१२७॥

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज ! जैसा आपने कहा है वैसा ही करूंगा । इससे मेरी बुद्धि और अधिक बढ़ी है [कथक कहता है कि] यह कह कर राजा ने किया भी वैसा ही । इससे राजा ने सागराम्बरा पृथिवी प्राप्त की ।

एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ।
स विहृत्येह सुसुखी शक्रस्यैति सलोकताम् ॥१२८॥

नारद ने कहा—जो राजा चातुर्वर्ण्य की रक्षा के लिए ऐसा व्यवहार करता है, वह इस लोक में अत्यन्त सुखपूर्वक विचर कर आत्मराज्य प्राप्त करता है ।

[हमारे विचार में १२५ से १२८ तक के श्लोकों का यहां कोई प्रकरण नहीं है, क्योंकि अगले अध्याय में कहा है—वैशम्पायन उवाच—संपूज्याथाभ्यनुज्ञातो महर्षेर्वचनात्परम् । प्रत्युवाचानुपूर्व्येण धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ॥१॥ युधिष्ठिर उवाच—भगवन्न्याय्यमाहैतं यथावद्धर्म्मनिश्चयम् । यथाशक्ति यथान्यायं क्रियतेऽयं विधिर्मया ॥२॥ राजाभिर्यद्यथा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य्यं पुरा वैतन्न संशयः। यथान्यायोपनीतार्थं कृतं हेतुमदर्थवत् ॥३॥ वयं तु सत्पथं तेषां यातुमिच्छामहे प्रभो। न तु शक्यं तथा गन्तुं यथा तैर्नियात्मभिः ॥४॥ अर्थात् वैशम्पायन ने कहा—नारद की पूजा करके, धर्म्मराज युधिष्ठिर ने महर्षि के वचन के पश्चात्, आज्ञा प्राप्त करके, क्रमपूर्वक उत्तर दिया। युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! आपने न्याययुक्त धर्म्मनिश्चय का ठीक ठीक उपदेश किया है। मैं यथाशक्ति न्यायानुसार इस विधान का अनुष्ठान करता हूं। पुराने राजाओं ने प्रमाणानुसार सार्थक न्यायप्राप्त जो कार्य्य ठीक रीति से किया है; हे प्रभो! हम उन्हीं के सत्पथ पर चलना चाहते हैं, किन्तु जिस प्रकार वे संयमी चल सके, हमसे वैसा नहीं हो पाता।

युधिष्ठिर का यह उत्तर उचित है। पिछले अध्याय के १२७ वें श्लोक में दिया गया उत्तर उचित नहीं है। उसमें युधिष्ठिर ने करने का वचन दिया है, इसमें कहा है कि करता हूं। नारद के प्रश्नों के अनुरूप यही उत्तर उचित है। नारद तो पूछते हैं—ऐसा करते हो न? उत्तर चाहिए—'हां करता हूं।' अथवा 'नहीं 'करूंगा' उत्तर उचित नहीं है।

इसके पश्चात्, छठे से लेकर बारहवें अध्याय तक युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तररूप में नारदकथित विविध राजभवनों—इन्द्र, वरुण आदि के राजभवनों—का नारदकृत वर्णन है, जो प्रसङ्गानुकूल नहीं है।

युधिष्ठिर के हां करने पर नारद का प्रस्थान ही उचित है। अतः हमारे विचार के अनुसार बारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक इस पांचवें अध्याय के अन्त में अथवा अगले अध्याय के अन्त में होने उचित हैं। वे ये हैं—आपृच्छे त्वां गमिष्यामि दाशार्हनगरीं प्रति ॥३२॥ एवमाख्याय पार्थेभ्यो नारदो जनमेजय। जगाम तैर्वृतो राजन्नृषिभिर्यैः समागतः ॥३३॥ गते तु नारदे पार्थो भ्रातृभिः सह कौरवः। राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं चिन्तयामास पार्थिवः ॥३४॥ अर्थात् नारद ने कहा—मैं आप की अनुज्ञा लेता हूं। मैं दाशार्हनगरी को जाना चाहता हूं। वैशम्पायन बोला—हे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनमेजय ! नारद कुन्तीपुत्रों को ऐसा कहकर, जिन ऋषियों के साथ आया था, उनके साथ चला गया। नारद के चले जाने पर कुन्तीपुत्र राजा कौरव (युधिष्ठिर) भ्राताओं के साथ यज्ञश्रेष्ठ राजसूय का विचार करने लगा ॥]

इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां सभापर्वणि लोकपालसभाख्यानपर्वणि नारद-प्रश्नमुखेन राजधर्म्मानुशासने पञ्चमोऽध्यायः ॥

★ इति राजधर्म्मानुशासननामको नारदप्रश्नः समाप्तः ★

इति श्रीमत्परमहंसपारिव्राजकाचार्य्येण वेदानन्दसरस्वतीति यथार्थाख्येन वे० शा० स्वामिना दयानन्दतीर्थेन कृतं नारदनीतिभाषान्तरं सटिप्पणं पूर्तिमगात् ॥

। शुभं भूयात् ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरजानन्द वैदिक संस्थान
के कतिपय प्रकाशन

सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव—

ऋषि दयानन्द ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखा है—"सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सदाशय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज में धर्म-काम-मोक्ष सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ।"

"सत्यार्थप्रकाश' के लिखे जाने के अस्सी वर्ष पश्चात् महर्षि के अनन्य भक्त श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी ने **'सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव'** नामक प्रबन्ध लिखा । यह प्रबन्ध एक प्रतिवेदन है, इस बात का—कि गत अस्सी वर्ष में ऋषि दयानन्दानुमोदित ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि-र्यन्त [जिन्हें प्रबन्ध लेखक' ने 'विरजानन्द मुनि पर्यन्त' लिखा है] महाशय महर्षियों के मन्तव्य कहां तक सर्वत्र भूगोल में प्रवृत्त हो पाये हैं ।

२० × ३० ।१६ आकार की सवा सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य—रु० १.५० पै०

सावित्रीप्रकाश—

वेद मन्त्रों के मौलिक व्याख्याता श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी द्वारा लिखित गायत्री मन्त्र की व्याख्या इस तुस्तक में प्रस्तुत की गई है । साथ में उपासना सम्बन्धी अन्य अनेक तत्त्वों का प्रतिपादन कर दिया गया है । गायत्री मन्त्र के जप की विधि का भी उल्लेख है । २० ×

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०।१६ आकार की सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल —१.५० पैं०

स्वाध्यायसन्दोह—

नित्य पाठ करने योग्य ३६७ विषयों के ३६७ वेद मन्त्रों की सरल सुबोध एवं भावपूर्ण व्याख्या इस ग्रन्थ में दी गई है। यह व्याख्या वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् श्री स्वामी वेदानन्ददीर्थ जी ने लिखी है। इसके आधार पर प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति धार्मिक प्रसंगों में प्रभावशाली एवं आकर्षक प्रवचन के लिए सहयोग प्राप्त कर सकता है। स्वयं अध्ययन से आध्यात्मिक उदात्त मावना जागृत होती हैं। २० × ३०।८ आकार की छह सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल—१०)रु०।

स्वाध्याय—

यह पुस्तक आर्यसमाज के कतिपय मूर्द्धन्य विद्वानों के लेखों का संग्रह है। वेद में देवता का स्वरूप, वेद परिणाम या वेदों की इयत्ता, पुनरुक्त मन्त्र विचार आदि विषयों पर वैदुष्य एवं अनुसंधानपूर्ण लेख हैं। पाठक को इनसे अनेक नवीन जानकारी प्राप्त होंगी। २० × ३०। १६ आकार की पौने दो सौ से अधिक पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल —१)रु०

बृहद्यज्ञपद्धति—

आजकल बड़े-बड़े यज्ञों का विशेकर चारों बेदों अथवा किसी एक वेद के सम्पूर्ण मन्त्रों से किये जाने वाले यज्ञों का चलन बल पकड़ रहा है। किन्तु अभी तक इन यज्ञों के लिए किसी एक व्यवस्थित पद्धति का अभाव रहा। अनेक यज्ञप्रेमी महानुभावों के निवेदन पर श्री स्वामी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदानन्दतीर्थ जी ने इस यज्ञपद्धति का निर्माण किया है। अब अनेक यज्ञ-भक्त सज्जन इसीके अनुसार यज्ञ करते कराते हैं। इस पद्धति में यह यत्न किया गया है, कि यज्ञानुष्ठान के समय सब विधि-कार्य वेद मन्त्रों द्वारा किया जाये। यह एक प्रकार के श्रौत यज्ञ की पद्धति है।

मूल्य ५० न० पै०

वेदपरिचय—

इस लघु पुस्तिका द्वारा श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी महाराज ने वेद सम्बन्धी अनेक[पाश्चात्यों का वेद और उसका कारण, वेद का आकर्षण, वेदोत्पत्ति प्रकार, ज्ञान का आरम्भ, भाषा की उत्पति,, वैदिक भाषा सबसे पुरानी, ब्राह्मण वेद नहीं, शाखा वेद नहीं इत्यादि] विषयों पर विद्वत्तापूर्ण प्रामाणिक विचार प्रस्तुत किये हैं।

मूल्य ५० न० पै०।

जीवन की भूलें—

श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी का स्वलिखित जीवन चरित्र। जीवन की अनेक अद्भुत घटना ओजपूर्ण भाषा में अङ्कित की गई हैं।

मूल्य ५० न० पै०।

आर्यसमाज और राजनीति—

प्रवक्ता श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी. मूल्य २० न० पै०।

सन्ध्यालोक—

लेखक=श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ। सन्ध्या की संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त उत्तम व्याख्या। सन्ध्या-विषयक अन्य अनेक आवश्यक ज्ञातव्य विषयों से युक्त।

मूल्य १.५० पै०।

अध्यक्ष—
विरजानन्द वैदिक संस्थान,
गाजियाबाद, (मेरठ), उ० प्र०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मसूत्र-विद्योदयभाष्य

ग्रन्थकार-विद्याभास्कर श्री पं० उदयवीर शास्त्री, विद्यावाचस्पति,। प्रस्तुत भाष्य में शास्त्रारम्भ के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए-ब्रह्मसूत्रों के अर्थ को मौलिक रूप में स्पष्ट करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया गया है। संभव है—प्रस्तुत 'ब्रह्मसूत्रविद्योदयभाष्य' आचार्य शंकर से प्राक्तन वेदान्ताचार्यों की पद्धति के अधिक समीप हो। विद्योदयभाष्य-प्रणेता के वास्तविक सूत्रार्थ-उद्घाटन की सफलता की परख सहृदय पाठक स्वयं करें। ग्रन्थ २३ × ३६।१६ आकार के ८२८ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। कागज उत्तम, छपाई स्वच्छ, सुन्दर, जिल्द सुदृढ़ आकर्षक है।

मूल्य २०) रु० मात्र

वेदान्तदर्शन का इतिहास—ग्रन्थकार पूर्वोक्त। वेदान्तदर्शन पर शास्त्री जी की यह दूसरी रचना पन्द्रह अध्यायों में पूर्ण है। ग्रन्थ की मुख्य तीन विशेषता निम्नप्रकार हैं—

१—सूत्रकार बादरायण महाभारत के मूल रचयिता महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायन हैं, सूत्ररचना का वही काल है।

२—सूत्ररचना के पूर्व अध्यात्म परम्परा का स्वरूप, तथा आद्य शंकराचार्य से प्राक्तन लगभग बारह आचार्यों का यथोपलब्ध जीवन विवरण, जिन्होंने वेदान्त पर व्याख्या ग्रन्थ लिखे।

३—शंकर मठों में सुरक्षित पुष्कल इतिहास-सामग्री, तथा अन्य इतिहास साधनों के आधारों पर आद्य-आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव काल निर्णय-रक्षोष्ट एरा पूर्व ५०९ वर्ष। इससे सम्बद्ध अन्य विचारों की समीक्षा व विवेचन।

ग्रन्थ कलेवर सब प्रकार उत्तम, आकार पूर्ववत्।

मूल्य-२५) रु० मात्र

वैशेषिकदर्शन विद्योदयभाष्य—ग्रन्थकार-पूर्ववत्। प्रस्तुत भाष्य व्याख्यारूप होते भी मौलिक रचना के समान है। परम्परागत भाष्य सरणि का अन्धानुकरण न करते हुए सूत्रपदों को संदर्भ-संगत अर्थों में जंचाकर दर्शनकार के वास्तविक अभिप्राय को प्रस्तुत करने का श्लाघ्य प्रयास किया गया है। संभवतः यह प्रथम भाष्य है, जिसमें प्रारम्भिक सूत्रगत 'धर्म' पद की शास्त्रानुसार यथार्थ व्याख्या प्रस्तुत कीगई है।

भाष्य के अन्त में दो महत्वपूर्ण परिशिष्ट हैं। पहले में वैशेषिक के कतिपय उलझनपूर्ण सिद्धान्तों का विवरण, तथा दूसरे में आधुनिक विज्ञान [रसायन व भौतिकी शास्त्र] का संक्षिप्त परिचय तथा वैशेषिक प्रतिपादित पदार्थों के साथ उनका उपयुक्त सन्तुलन प्रस्तुत करने का प्रयास है। आकार आदि पूर्ववत्। मूल्य-१५) रु० मात्र।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश स्थूलाक्षर (स

विरजानन्द वैदिक संस्थान के संस्थापक मह
वेदानन्दतीर्थ जी महाराज कृत 'सत्यार्थप्रकाश' प
टिप्पणी सहित यह लगभग ७०० पृष्ठों का २० ×
पाइन्ट टाईप में फ्रोटो ऑफ-सैट पद्धति से दो रंगो
सुबद्ध, अशुद्धिशून्य, अति-सुन्दर प्रकाशन है।

प्रारम्भ में अनेक पाठों के विषय में सम्पादकी
र्थ-प्रकाश के कतिपय कठिन स्थलों स्पष्टीक
अन्त में सत्यार्थप्रकाश-गत समस्त प्रमाणों की सूच
सूची आधुनिक रीति पर अकारादि क्रम से पं० उदयव
तैयार की जाकर जोड़ दी गई है। सत्यार्थप्रकाश के
जनता ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ पसन्द किया है।

सांख्यसिद्धान्त—ग्रन्थकार—विद्याभास्कर श्री पं० उदयवीरजी शास्त्री विद्यावाचस्पति।

शास्त्रीजी की सांख्यविषयक रचनाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम—सांख्यषडध्यायी का सूत्र-भाष्य, जो 'सांख्यदर्शन विद्योदयभाष्य' नाम से प्रकाशित है। द्वितीय—सूत्रभाष्य की भूमिका के भी पुनः दो भाग हैं—(१) सांख्यदर्शन का बहिरंग परिचय—सांख्यकार कपिल, उनका युग, सांख्य का उद्भव और विकास, सांख्यपरक अन्य साहित्य इत्यादि, जिसे 'सांख्यदर्शन का इतिहास' के रूप में प्रस्तुत किया है। (२) सांख्य का अन्तरंग परिचय='सांख्यसिद्धान्त' का विषय है।

लगभग पौने छह सौ पृष्ठ का वृहत्काय ग्रन्थ पांच अध्यायों में पूर्ण हुआ है—पुरुष, प्रकृति, प्रकृति के विकार, सांख्यसिद्धान्तों की वेदमूलकता, सांख्यदर्शन का प्राचीन साहित्य पर प्रभाव। अन्त में तीन महत्वपूर्ण अनुक्रमणिकाएं भी दे दी गई हैं। कागज़, छपाई, जिल्द आदि अत्युत्तम, आकार १८ × २२।८, मूल्य १६ रु०।

अध्यक्ष—विरजानन्द वैदिक संस्थान

गाजियाबाद (मेरठ) उ० प्र०

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.